पहला
कुरिन्थियों

PAHLA KURINTHIYON

First Hindi Edition : December-2007

Adapted into Hindi by : **J.P. Pandey**
Assisted by : **R.K. Khullar**

This book is based on the English title "Lessons in FIRST CORINTHIANS for Growing Believers" (Tim Mcmanigle) published by the Fellowship Bible Church, 3217, Middle Road, Winchester, VA. (U.S.A.).

Copyright © The Fellowship Bible Church,
Winchester, VA. (U.S.A.).

All rights reserved

Printed in Nepal

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
एक	5–15
दो	16–26
तीन	27–33
चार	34–39
पाँच	40–46
छः	47–54
सात	55–60
आठ	61–74
नौ	75–84
दस	85–89
ग्यारह	90–96
बारह	97–103
तेरह	104–107
चौदह	108–111

नामक

बाइबॅल-पुस्तक का एक संक्षिप्त अध्ययन

एक

यह पत्री कुरिन्थुस नामक एक प्राचीन नगर की कलीसिया को लिखी गई थी। कुरिन्थुस के बारे में **प्रेरितों के काम** की पुस्तक में भी उल्लेख किया गया है। पौलुस अपनी द्वितीय मिशनरी यात्रा के दौरान वहाँ गया था। पहली बार पौलुस के प्रचार से कई लोग प्रभु यीशु पर विश्वास किये और पौलुस वहाँ लगभग डेढ़ वर्ष तक रुक कर परमेश्वर के वचन की शिक्षा देता रहा।

पौलुस जब इफिसुस में था तब "खलोए के घराने" द्वारा कुरिन्थुस की मंडली के बारे में उसे जो कुछ बताया गया उससे वह बहुत चिन्तित था। कुरिन्थुस की मंडली को सम्बोधित इस पत्री का प्रमुख उद्देश्य (मसीही) सिद्धान्त सिखाना नहीं था, बल्कि यह प्रमुखतः सुधारात्मक उद्देश्य से लिखी गई थी। इसके पहले अध्याय से लेकर चौथे अध्याय तक विभाजन व मतभेद की समस्या का ज़िक्र है। पाँचवें अध्याय में व्यभिचार की अनदेखी करने का उल्लेख है। छठवें अध्याय में अधर्मियों अर्थात् अविश्वासियों की अदालत में मुकदमा (लड़ाई-झगड़े) करने की बात पायी जाती है। दसवें अध्याय में मूर्तियों को अर्पित भोजन खाने की समस्या का ज़िक्र है। ग्यारहवें अध्याय में **प्रभु भोज** के समय **मतवाला** होकर अशोभनीय व्यवहार करने की समस्या का उल्लेख किया गया है, और चौदहवें एवं पन्द्रहवें अध्याय में पुनरुत्थान, सार्वजनिक सेवकाई तथा महिलाओं के सेवा-योगदान के बारे में कुरिन्थुस की कलीसिया में अज्ञानता, भ्राँति एवं गलत शिक्षा सम्बन्धी समस्या दिखायी देती है।

"पौलुस, जो परमेश्वर की इच्छा से यीशु मसीह का प्रेरित होने के लिए बुलाया गया, और हमारे भाई सोस्थिनेस की ओर से" (प0कुरि0 1:1)। पौलुस प्रारम्भ में ही कुरिन्थुस की मंडली के लोगों को यह स्पष्ट कर देता है कि वह परमेश्वर की इच्छा से ही यीशु मसीह का प्रेरित है। उसने अपनी पसन्द से यह पदाधिकार नहीं चुना था। पौलुस को प्रेरित होने के लिए पिता परमेश्वर ने चुना था। अतएव उसका संदेश भी परमेश्वर प्रदत्त संदेश था, पौलुस के दिमाग की देन (उपज) नहीं। यहां पहले पद में जिस सोस्थिनेस नामक व्यक्ति का ज़िक्र है, उसने इफिसुस में पौलुस की सहायता किया था और उसके साथ यात्रा भी किया था। सम्भवतः यह वही सोस्थिनेस है जिसे (प्रेरितों के काम 18:17 के अनुसार) मारा-पीटा भी गया था। जैसा कि **प्रेरितों के काम**, **रोमियों** तथा **इफिसियों** नामक पुस्तकों के अध्ययन से भी स्पष्ट है, प्रायः पौलुस ने अपनी प्रचार-यात्राएं अन्य किसी सहयात्री को साथ लेकर कीं। ऐसा क्यों? इससे एक खास फायदा यह था कि उसके साथ यात्रा करने वाले व्यक्ति को पौलुस की सेवा-सहायता करने के अतिरिक्त उससे सीखने का अवसर मिलता था। अपनी मंडली से अन्य किसी स्थान पर शिक्षा-सेवा के लिए जाते समय हमें भी अन्य किसी विश्वासी को साथ लेकर जाना अच्छा होता है।

"परमेश्वर की उस कलीसिया के नाम जो कुरिन्थुस में है, अर्थात् उनके नाम जो मसीह यीशु में पवित्र किए गए और उन सब के साथ जो प्रत्येक स्थान पर हमारे प्रभु यीशु के नाम से प्रार्थना करते हैं, पवित्र होने के लिए बुलाए गए हैं – वह हमारा और

उनका भी प्रभु है : हमारे पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह की ओर से तुम्हें अनुग्रह और शांति मिले" (प0कुरि0 1:2-3)। कुरिन्थुस की मंडली को इस पत्री का संदेश लिखते समय पौलुस ने "मसीह यीशु में पवित्र किए गए" (विशिष्ट उपयोग के लिए पृथक किए गए) लोगों तथा सर्वत्र सामान्य विश्वासियों, दोनों प्रकार के लोगों को सम्बोधित किया। पौलुस यह चाहता था कि सभी विश्वासी ईश्वरीय अनुग्रह एवं शांति का आनन्द ले सकें। यद्यपि पवित्र बाइबॅल की प्रत्येक पुस्तक किसी खास व्यक्ति या समूह को सम्बोधित की गई है, तथापि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पवित्र आत्मा का उद्देश्य यह है कि परमेश्वर का वचन सब समय एवं सब लोगों के लिए उसका पवित्र संदेश रहे। स्मरण रहे, परमेश्वर कभी बदलता नहीं– वह अपरिवर्तनीय है। वह आज भी हमें वही सिखाना चाहता है जो वह सदियों पूर्व, मूलतः बाइबॅल-पुस्तकों को लिखते समय, उस जमाने के लोगों को सिखाना चाहता था।

"मैं तुम्हारे विषय में अपने परमेश्वर के उस अनुग्रह के लिए जो मसीह यीशु में तुम को दिया गया, परमेश्वर का निरन्तर धन्यवाद करता हूँ" (प0कुरि0 1:4)। कुरिन्थुस की मंडली पर सारे ईश्वरीय अनुग्रह के लिए पौलुस ने पिता परमेश्वर को धन्यवाद दिया। वे परमेश्वर से पृथक एवं नरक-दण्ड के योग्य पापी लोग थे, लेकिन परमेश्वर के अनुग्रह से मसीह द्वारा उनका उद्धार हुआ। अब वे परमेश्वर की संतान हो गए थे– अर्थात् परमेश्वर की दृष्टि में (सैद्धान्तिक तौर पर) धर्मी ठहराए गए और उसके समक्ष ग्रहण योग्य।

"तुम मसीह में प्रत्येक बात अर्थात्, सम्पूर्ण वचन और समस्त ज्ञान में धनी किए गए— जैसा कि मसीह के विषय की साक्षी तुम में प्रमाणित भी हुई— यहाँ तक कि तुम में किसी आत्मिक वरदान का अभाव नहीं है, और तुम हमारे प्रभु यीशु मसीह के प्रकट होने की प्रतीक्षा उत्सुकता-पूर्वक करते रहते हो" (प0कुरि0 1:5-7)। कुरिन्थुस के विश्वासियों को पौलुस ने इस बात पर विचार करने के लिए प्रोत्साहित किया कि ज्ञान एवं संचार-योग्यता की कितनी अधिक आशिष से प्रभु ने उन्हें आशीषित किया है। जीवन और ईश्वर-परायणता के लिए आवश्यक सब कुछ उन्हें प्रदान किया गया था (प0पत0 1:3)। उन्हें किसी आध्यात्मिक आशिष की घटी नहीं थी। परमेश्वर की दृष्टि में (सैद्धान्तिक तौर पर) उन्हें सब कुछ मिल चुका था— उन्हें इसकी जानकारी रही हो अथवा नहीं। हाँ, इसकी जानकारी होने पर हम इस सच्चाई पर विश्वास करके इहलौकिक जीवन-परिस्थितियों में इसको ग्रहण कर सकते हैं (और वे भी ऐसा कर सकते थे)।

"जो तुम्हें अन्त तक दृढ़ भी करेगा कि हमारे प्रभु यीशु मसीह के दिन में निर्दोष ठहरो। परमेश्वर विश्वासयोग्य है, जिसके द्वारा तुम उसके पुत्र हमारे प्रभु यीशु मसीह की संगति में बुलाए गए हो" (प0कुरि0 1:8-9)। "मसीह में" प्राप्त पदाधिकार के कारण विश्वासीजन परमेश्वर के समक्ष निर्दोष है, और अपने पुनरागमन के समय **मसीह** उसे उसकी (इहलौकिक) अवस्था में पिता परमेश्वर के समक्ष निर्दोष एवं पवित्र साबित (प्रस्तुत) करेगा। स्मरण रहे, अपने "पुत्र" के साथ इस अद्भुत संगति में परम प्रधान परमेश्वर ने हमें

बुलाया है, और वह पूर्णतः विश्वसनीय है। अतः हमारा भरोसा है कि वह अपने इस कार्य को अवश्य पूर्ण करेगा।

इस पत्री के लिखे जाने के समय कुरिन्थुस की मंडली के लोगों में मतभेद (फूट) एवं अन्य शारीरिकतापूर्ण पाप अपना काम दिखा रहे थे। बहरहाल, परमेश्वर के समक्ष उनकी स्वीकार्यता पर इसका कोई असर नहीं था, क्योंकि यह आत्मिक (ईश्वरीय) स्वीकार्यता एवं आशिष-अधिकार उनके मसीही जीवन की विश्वासयोग्यता पर नहीं, बल्कि परमेश्वर की विश्वासयोग्यता पर आधारित थी, जिसने उन्हें इस संगति में बुलाया था (रोमियों 8:1, 28–29)। स्मरण रहे! परमेश्वर ने जगत से प्रेम किया, परमेश्वर ने अपने "एकलौते पुत्र" को हमारे बदले बलिदान होने (मरने) के लिए भेजा; परमेश्वर ने ही हमें यह दर्शाया कि हमें उद्धारकर्ता की जरूरत है और हम उसके "पुत्र" पर विश्वास कर सकते हैं; परमेश्वर ही अपने "पुत्र" की धार्मिकता में हमें पूर्णरूपेण ग्रहण करता है; परमेश्वर ने ही इन आत्मिक सच्चाईयों को हम पर प्रकट करने के लिए अपना पवित्र आत्मा प्रदान किया है ताकि हम इनका वर्तमान में अनुभव करें। जैसे प्रभु परमेश्वर की विश्वासयोग्यता के द्वारा ही यह सब आशिषें हमारे लिए उपलब्ध हुई हैं, उसी प्रकार उसकी विश्वासयोग्यता ही हमें अन्त तक संभालेगी, जबकि हम उसकी उपस्थिति में होंगे और उसके समक्ष उसकी प्रिय संतान की भाँति पूर्णरूपेण स्वीकार्य होंगे।

हमें यह नहीं भूलना है कि परमेश्वर जो कुछ आरम्भ करता है, उसे अवश्य पूरा करता है। ऐसा नहीं है कि वह कोई काम शुरू

करता है और पूरा किए बगैर छोड़ देता है। मिस्र की गुलामी से छुड़ाए जाने के बाद लाल सागर के पास इस्राएलियों को ऐसा लगा जैसे कि परमेश्वर उनका पीछा करने वाले मिस्रियों को उनका विनाश करने देगा। लेकिन प्रभु परमेश्वर ने ऐसा नहीं होने दिया। आगे चलकर जब उन्हें भोजन नहीं मिला और वे भुखमरी से भयग्रस्त थे, तब परमेश्वर ने उनके लिए 'स्वर्ग' से भोजन प्रदान किया। बाद में, जब उन्हें पानी नहीं मिल रहा था, तब उसने एक चट्टान के द्वारा उन्हें जल उपलब्ध कराया। अन्ततः, प्रतिज्ञात देश में जब उन्हें बहुत से शत्रुओं का सामना करना पड़ा तब परमेश्वर ने उन शत्रुओं को भी पराजित किया। परमेश्वर, आज भी वही परमेश्वर है। हममें से प्रत्येक के जीवन में उसने जो कार्य प्रारम्भ किया है, उसे वह अवश्य पूरा करेगा (फिलि0 1:6)। वह दिन आने वाला है, जबकि हम स्वयं को सर्वशक्तिमान परमेश्वर के समक्ष निर्दोष रूप में स्वीकार्य देखकर आश्चर्यचकित होंगे।

ध्यान दें कि पौलुस ने कुरिन्थुस के मसीहियों को प्रथमतः इस सत्य की सुनिश्चियता दर्शायी कि प्रत्येक विश्वासीजन पिता परमेश्वर के समक्ष (मसीह में) निर्दोष एवं स्वीकार्य है। इस सच्चाई को दर्शाने के दो प्रमुख कारण थे : (1) कुरिन्थुस के विश्वासियों को इस सच्चाई को जानने, समझने एवं मानने से यह ज्ञान हुआ कि परमेश्वर के समक्ष उनकी स्वीकार्यता उनके किसी धर्म-कर्म पर आधारित नहीं है। हाँ, वे समस्याग्रस्त थे, लेकिन इससे परमेश्वर के समक्ष उनकी स्वीकार्यता पर कोई प्रभाव या परिवर्तन नहीं आना था। (2) इस सच्चाई के ज्ञान से वे अपने मध्य फैले मतभेद और विवाद

की अनावश्यकता और निम्नता (तुच्छता) को पहचानने में मदद पाते। पवित्र एवं धर्मी परमेश्वर के समक्ष प्राप्त अपनी अमूल्य आशिषों को जब हम पहचानने लगते हैं, तब हम अप्रधान, गौड़ व निम्न बातों, चीजों या पद-पदवी के पीछे नहीं भागते।

"अब हे भाइयो, मैं प्रभु यीशु मसीह के नाम से तुमसे आग्रह करता हूँ कि तुम सब एक ही बात कहो, और तुम में फूट न हो, परन्तु तुम्हारे मन और विचारों में पूर्ण एकता हो। क्योंकि हे भाइयों, खलोए के घराने के द्वारा तुम्हारे विषय में मुझे बताया गया है कि तुम में परस्पर झगड़े चल रहे हैं। मेरा तात्पर्य यह है कि तुम में से कोई कहता है, 'मैं पौलुस का हूं', तो कोई, 'मैं अपुल्लोस का हूं', और कोई, 'मैं कैफा का हूं' तथा कोई कहता है, 'मैं मसीह का' हूं" (प0कुरि0 1:10-12)। ये विश्वासी 'शारीरिक' थे और इसीलिए 'मनुष्यों' के पीछे चलकर उन पर गर्व कर रहे थे। वे इस बात पर विवाद में फंसे थे कि पौलुस, पतरस और अपुल्लोस में से कौन सा व्यक्ति सबसे अच्छा शिक्षक है। जो जिसे अच्छा मानता था, उसी का अनुयायी होने का अनावश्यक घमंड करता था। इनके अलावा उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो मात्र मसीह का अनुयायी होने का दावा कर रहे थे। बेशक, हमें मनुष्यों की अपेक्षा मसीह का अनुयायी होना है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम यह दिखावा करते फिरें कि अन्य लोगों से हम ज्यादा सही या धर्मी हैं (प0कुरि0 11:1)। हां, 'मसीह का होने' की बात बड़ी आत्मिक दिखती है। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारी शारीरिकता स्वयं को आत्मिक भेष में पेश करने में माहिर है। कुरिन्थुस के

शारीरिक विश्वासी लोग भी अपनी आध्यात्मिक शब्दावली द्वारा अपने अहं का दिखावा करना चाह रहे थे। उन्हें सही शिक्षा प्रदान करने हेतु जो लोग इस्तेमाल किए जा रहे थे उनके लिए पिता परमेश्वर के प्रति आभारी होने के बजाए, उनमें से मनपसन्द शिक्षकों की प्रशंसा और (इसके नतीजतन) अपनी बड़ाई में लगे थे।

पवित्र आत्मा की अधीनता में हम प्रभु यीशु मसीह के अनुग्रह और ज्ञान में बढ़ने के आकांक्षी होते हैं (दू0पत0 3:18)। विभिन्न समय पर, परमेश्वर अपने अनेक सेवकों को हमारे जीवन में इस्तेमाल करता है। आत्मा की अधीनता में हमारा मन परमेश्वर की सामर्थ्य एवं उसकी सर्वसत्ता पर लगा रहेगा, न कि उसके सेवकों की योग्यता पर।

"तो क्या मसीह विभाजित हो गया? क्या पौलुस तुम्हारे लिए क्रूस पर चढ़ाया गया? या तुम्हें पौलुस के नाम से बपतिस्मा मिला?" (प0कुरि0 1:13)। उनकी आपसी मतभेद रूपी मूर्खता तथा उनकी पतित शारीरिकता को बेपर्द करने के लिए पौलुस ने उनके समक्ष कुछ प्रश्न खड़े किए। "क्या मसीह विभाजित हो गया" है? "एक ही देह है और आत्मा भी एक है : ठीक उसी प्रकार अपनी बुलाहट की एक आशा में तुम भी बुलाए गए थे। एक ही प्रभु, एक ही विश्वास, एक ही बपतिस्मा, और सब का एक ही परमेश्वर पिता है, जो सब के ऊपर और सबके मध्य और सब में है" (इफि0 4:4-6)। सभी विश्वासी 'मसीह में' एक किए गए हैं; परन्तु इफिसियों 4:3 के इन शब्दों को नहीं भूलना चाहिए : "यत्न करो कि मेल के बन्धन में आत्मा की एकता सुरक्षित रहे"। एकता को सिर्फ

शांति (मेल-मिलाप) के द्वारा ही सुरक्षित रखा जा सकता है, जो कि "आत्मा का फल" है। अतः पवित्र आत्मा के चलाए चलने पर ही सच्ची एकता कायम रह सकती है। जब विश्वासी लोग शारीरिकता के अनुसार जीवन व्यवहार करते हैं तो मंडली में फूट (मतभेद) होती है। कुरिन्थुस की कलीसिया में भी यही हो रहा था। पौलुस द्वारा प्रस्तुत अन्य प्रश्नों पर भी ध्यान दें : "क्या पौलुस तुम्हारे लिए क्रूस पर चढ़ाया गया"? बिल्कुल नहीं। क्या "तुम्हें पौलुस के नाम में बपतिस्मा मिला"? हरगिज नहीं। इन प्रश्नों के द्वारा पौलुस उनकी इहलौकिक "शारीरिकता" रूपी नीयत-भावना को दर्शा रहा था।

"मैं परमेश्वर का धन्यवाद करता हूं कि मैंने क्रिस्पुस और गयुस के अतिरिक्त तुम में से किसी को बपतिस्मा नहीं दिया, कि कोई मनुष्य यह न कहने पाए कि मुझे तेरे नाम से बपतिस्मा मिला। और हाँ, मैंने स्तिफनास के कुटुम्ब को भी बपतिस्मा दिया; इन्हें छोड़, मैं नहीं जानता कि मैंने और किसी को बपतिस्मा दिया" (प0कुरि0 1:14-16)। बपतिस्मा सम्बन्धी पौलुस की यह बातें इस सच्चाई को उजागर करती हैं कि 'मात्र बपतिस्मा' लेने से हमारे जीवन में (आन्तरिक तौर पर) कुछ नहीं होता। परन्तु महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पानी में बपतिस्मा 'मसीह की मृत्यु, दफन तथा उसके पुनरुत्थान' के साथ विश्वासी की 'आन्तरिक एकता व पहचान' का प्रतीक है। विश्वासीजन की "मसीह में" स्थापना (रोपण) और अन्ततः मसीह की मृत्यु, दफन एवं पुनरुत्थान में उसकी स्थापना पानी के बपतिस्में पर आधारित नहीं है। पानी में

बपस्तिमा लेना तो इस आत्मिक बपतिस्में में अर्थात् मसीह में स्थापना का सिर्फ बाह्य प्रतीक है। अतः पौलुस ने कुरिन्थुस की मंडली के लोगों को याद दिलाया कि उसकी सेवकाई मसीह-केन्द्रित थी। वह मानवीय ज्ञान-बुद्धि व योग्यता के बजाय सुसमाचार के माध्यम से ईश्वरीय ज्ञान-बुद्धि एवं सामर्थ्य पर आश्रित था। *"क्योंकि मसीह ने मुझे बपतिस्मा देने के लिए नहीं, परन्तु सुसमाचार प्रचार के लिए भेजा है, वह भी वाक्पटुता के अनुसार नहीं, ऐसा न हो कि मसीह का क्रूस व्यर्थ ठहरे। क्योंकि क्रूस की कथा नाश होने वालों के लिए मूर्खता है, परन्तु हम उद्धार पाने वालों के लिए परमेश्वर की सामर्थ्य है"* (प0कुरि0 1:17-18)। पौलुस पवित्र आत्मा के चलाए चला और मसीह में अपनी स्थापना-अधिकार के आधार पर सेवा-कार्य किया। आत्माओं के बचाए जाने के लिए उसने पवित्र आत्मा पर भरोसा किया, अपने आप पर अथवा अपने ज्ञान-बुद्धि पर नहीं।

पौलुस के ही द्वारा लिखित रोमियों की पत्री के पहले अध्याय के सोलहवें पद के इन शब्दों पर ध्यान दें : "मैं सुसमाचार से लज्जित नहीं होता, क्योंकि यह प्रत्येक विश्वास करने वाले के लिए, पहले यहूदी और फिर यूनानी के लिए, उद्धार के निमित्त परमेश्वर की सामर्थ्य है"। जब किसी व्यक्ति के अन्तर्मन में पवित्र आत्मा द्वारा सुसमाचार की सच्चाई प्रकट की जाती है तभी वह व्यक्ति सचमुच विश्वास करता है और उद्धार पाता है। **आत्मा** द्वारा चलाए जाने पर दूसरों के उद्धार हेतु हम पवित्र आत्मा पर आश्रित रहेंगे, लेकिन शारीरिकता द्वारा चलाए जाने पर हम सांसारिक ज्ञान-बुद्धि द्वारा लोगों को कायल करके कनवर्ट करने की अपनी कोशिश पर भरोसा करेंगे।

"क्रूस की कथा नाश होने वालों के लिए मूर्खता है"। इन शब्दों के द्वारा पौलुस कुरिन्थुस की मंडली के विश्वासियों के परस्पर मतभेद की मूर्खता को पुनः प्रकट कर रहा था। उनके जीवन में उद्धार एवं मसीह में आत्मिक विकास, पवित्र आत्मा द्वारा क्रूस की सच्चाई (सुसमाचार) को उनके जीवन में इस्तेमाल (प्रकाशित) करने से आरम्भ हुआ था, न कि उन्हें शिक्षा देने वालों के ज्ञान-बुद्धि या वाक्पटुता से। क्रूस की गहरी सच्चाईयों से अधिकतर मसीही अपरिचित होते हैं। हमारे पाप का दंड-मूल्य चुकाने के लिए यीशु मसीह अकेले क्रूसित हुआ, और पाप की शक्ति (सत्ता, अधिकार या अधीनता) से छुटकारा पाने हेतु ईश्वरीय दृष्टि में (सैद्धान्तिक तौर पर) मसीह के साथ हम भी क्रूसित हुए (रोमियों 5:8; 6:6-14)।

दो

"क्योंकि लिखा है, 'मैं ज्ञानियों के ज्ञान को नाश करूँगा और बुद्धिमानों की बुद्धि को व्यर्थ कर दूंगा'। कहां रहा ज्ञानी? कहाँ रहा शास्त्री? और कहां रहा इस युग का विवादी? क्या परमेश्वर ने इस संसार के ज्ञान को मूर्खता नहीं ठहराया"? (प0कुरि0 1:19-20)। पौलुस इस बात को पुनः दोहराता है कि उसने तो सिर्फ सुसमाचार का सन्देश दिया; न कि अपने मन-मस्तिष्क के ज्ञान-विचार को और न ही सांसारिक बुद्धिमत्ता से उपजे उपदेश को। यशायाह भविष्यवक्ता की पुस्तक के उन्तीसवें अध्याय में परमेश्वर का वचन है कि **वह** "बुद्धिमानों की बुद्धि" नष्ट करता है (29:13-14)। पवित्र शास्त्र बाइबॅल में परमेश्वर द्वारा मनुष्य की बुद्धि-युक्ति नष्ट करने के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं :— परमेश्वर के पास अपनी बुद्धि-युक्ति से कैन द्वारा भेंट-बलिदान लाने का व्यर्थ दुस्साहस। परमेश्वर की आज्ञानुसार पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर बसने के बजाय ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन करते हुए, अपनी बुद्धिमत्ता के अहंकार के भरोसे, प्राचीन काल के मनुष्यों द्वारा बाबेल की मीनार बनाने का व्यर्थ दुस्साहस। यूसुफ के भाईयों द्वारा उसे गुलामी में बेंच कर अपनी बुद्धि से बनाई योजना पर व्यर्थ फूलने का दुस्साहस करना, लेकिन आगे चलकर उसी यूसुफ के समक्ष उनका नतमस्तक होना। राजा फिरौन द्वारा परमेश्वर की प्रजा (इस्राएल) को नष्ट करने की व्यर्थ योजना बनाने का दुस्साहस; क्योंकि अन्ततः प्रभु

परमेश्वर ने फिरौन के देश को दंडित किया, उसके पहिलौठों का नाश किया और फिरौन की फौज को लाल समुद्र में डुबो दिया। प्रभु यीशु मसीह की मृत्यु, उसका दफन किया जाना और उसका पुनः जीवित हो उठना, मानवीय बुद्धि व युक्ति को परमेश्वर द्वारा नष्ट करने का सबसे बड़ा उदाहरण है। प्रभु यीशु के देहधारण के समय यहूदी समाज में फरीसी और सदूकी लोग बहुत ज्ञानी माने जाते थे यानी ईश्वरीय मार्ग के ज्ञाता। परन्तु फरीसियों और सदूकियों ने प्रभु यीशु की शिक्षा को नकार दिया, क्योंकि वे अपनी दृष्टि में स्वयं को बहुत ज्ञानी समझते थे। उन्होंने प्रभु यीशु को झूठा एवं ईश-निन्दक कहा। इस प्रकार उन्होंने मसीह को मार डालने की योजना रची और इसे ईश्वरीय इच्छा माना। अतः इन लोगों ने यीशु को गिरफ्तार करके तत्कालीन रोमी शासक को सौंप दिया। उसे मारा-पीटा गया, उस पर थूका गया, उसका ठट्ठा उड़ाया गया और अन्ततः उसे एक सलीब (क्रूस) पर चढ़ा दिया गया। उसकी सलीबी मौत के बाद उन्होंने उसकी कब्र को मुहरबन्द करके उस पर पहरेदार लगा दिया ताकि उसके चेले उसके शव को चुरा न सकें। इस प्रकार मनुष्यों की बुद्धि व युक्ति ने मसीह को मारने के लिए अपनी योजना को पूरा किया; लेकिन मसीह की इस मृत्यु को पिता परमेश्वर ने हमारे पापों का दंड-मूल्य चुकाने हेतु इस्तेमाल किया। पिता परमेश्वर ने मसीह यीशु को पुनः जीवित किया और उसके स्वर्गारोहण के बाद उसे अपनी दाहिनी ओर विराजमान करके सारे संसार को यह दर्शाया कि मसीह की मृत्यु (बलिदान) द्वारा पाप का जो दंड-मूल्य चुकता किया गया उसे प्रभु परमेश्वर ने पूर्णतः ग्रहण कर लिया है।

परम प्रधान परमेश्वर की बुद्धि एवं सामर्थ्य इतनी अधिक महान है कि मनुष्य की मूर्खतापूर्ण बुद्धि व युक्ति को पापियों के लिए उद्धार-मार्ग निर्माण करने हेतु इस्तेमाल किया।

"क्योंकि जब परमेश्वर के ज्ञान के अनुसार यह संसार अपने ज्ञान से परमेश्वर को न जान सका, तो परमेश्वर को यह अच्छा लगा कि इस प्रचार की मूर्खता के द्वारा विश्वास करने वालों का उद्धार करे" (प0कुरि0 1:21)। यहूदी लोग परमेश्वर के चुने हुए लोग थे, लेकिन उनमें इसका अहंकार आ गया था। पौलुस के समय भी उनमें यही घमंड था। परमेश्वर की ओर से उन्हें ईश्वरीय व्यवस्था, भविष्यवक्ता तथा **पुराना नियम** के रूप में ईश्वरीय धर्मशास्त्र प्रदान किया गया था। वे वास्तव में परमेश्वर के लोग होने की मान्यता रखते थे। परन्तु इन सब विशिष्ट सुविधाओं (आशिषों) तथा ईश्वरीय ज्ञान की बातों की प्राप्ति के बावजूद वे मसीह द्वारा उद्धार सम्बन्धी सच्चाई को पहचानने में चूक कर गए। यूनानी और रोमी लोगों की भी यही दशा थी। वे भी अपने ज्ञानवान् एवं बुद्धिमान लोगों (दार्शनिकों) पर अहंकार और सत्य के ज्ञान का दावा करते थे। वास्तव में, अपने ज्ञानी या दार्शनिक लोगों के द्वारा किसी भी यूनानी और रोमी (ग़ैरयहूदी) जन ने सच्चे परमेश्वर को नहीं पहचाना था, और न ही उसके साथ सही सम्बन्ध अर्थात् सुसंगति स्थापित कर सका था। परम प्रधान परमेश्वर ने अपनी सर्वोच्च बुद्धिमत्ता के अधीन मनुष्य की बुद्धि व युक्ति के कर्म-प्रयास को परमेश्वर को जानने-पहचानने की अनुमति कभी नहीं दी। बहरहाल, परमेश्वर ने अपने वचन के प्रचार के द्वारा स्वयं को प्रकाशित या

प्रकट किया है। सृष्टि के आरम्भ से ही, परमेश्वर को जानने के आकांक्षी लोगों से प्रभु परमेश्वर यह उम्मीद करता है कि वे ईश्वरीय वचन पर सीधा-सादा विश्वास करें।

"क्योंकि यहूदी चिन्ह मांगते हैं और यूनानी ज्ञान की खोज में रहते हैं, परन्तु हम तो क्रूस पर चढ़ाए गए मसीह का प्रचार करते हैं, जो यहूदियों की दृष्टि में ठोकर का कारण और गैरयहूदियों के लिए मूर्खता है" (प0कुरि0 1:22-23)। परमेश्वर चिन्ह, चमत्कार या आश्चर्यकर्मों द्वारा लोगों को उद्धार नहीं देता। इसके बजाय, सुसमाचार के सीधे-सादे (वचन) प्रचार पर विश्वास के द्वारा उद्धार प्रदान करता है। लेकिन यहूदी लोगों के लिए यह सुसमाचार ठोकर का कारण लगा, क्योंकि वे मसीह यीशु को झूठा एवं ईश-निन्दक मानने की गलतफहमी में थे। वे यह सोचते थे कि किसी ईश-निन्दक द्वारा उद्धार कैसे सम्भव हो सकता है? दूसरी ओर सांसारिक ज्ञान-बुद्धि के प्रशंसक (यूनानियों/ग़ैरयहूदियों) को सुसमाचार संदेश निरी मूर्खता लगा, क्योंकि उनकी दृष्टि में यीशु मसीह एक गरीब यहूदी बढ़ई की संतान मात्र था जिसे उस जाति के लोगों ने अस्वीकार करके सलीब पर चढ़ा दिया था। अतएव यूनानियों की दृष्टि में ऐसे साधारण व्यक्ति के द्वारा उद्धार सम्भव नहीं दिखा। इसलिए सुसमाचार-संदेश की सीधी-सादी सच्चाई पर विश्वास करके उद्धार पाने की (ईश्वरीय) बात पर न तो यहूदी विश्वास करना चाहते थे, और न ही ग़ैरयहूदी।

ज़रा नूह को स्मरण करें! उसे प्रभु परमेश्वर ने कोई चिन्ह, चमत्कार या आश्चर्यकर्म करने को नहीं कहा; बल्कि सिर्फ सत्य-संदेश

का प्रचार करने को कहा। केवल नूह और उसके परिवार ने परमेश्वर की बात (संदेश) पर विश्वास किया और वे बच गए। शेष लोगों ने परमेश्वर की बात का तिरस्कार किया और नष्ट हुए। पौलुस लिखता है कि "यहूदी चिन्ह मांगते हैं"। रोचक है कि यहूदियों ने यीशु को बहुत से आश्चर्यकर्म करते देखा, लेकिन उस पर विश्वास करने के लिए उससे और अधिक आश्चर्यकर्म व चिन्हों की मांग करते रहे। यहूदी लोग इस सच्चाई को जानते थे कि परमेश्वर एक उद्धारकर्ता भेजने वाला है। परन्तु वे इस गलतफहमी में थे कि उनका उद्धारकर्ता उन्हें रोमी राज्य की गुलामी से छुड़ाएगा। वे पाप से उद्धार की बात पर ध्यान नहीं देना चाहते थे। उन्होंने यीशु को एक गरीब बढ़ई का बेटा एवं अनपढ़ मछुआरों का एक ऐसा अगुवा समझा जो स्वयं को अपराधी की तरह क्रूसित किए जाने से नहीं बचा पाया। उनकी नज़र में वह दूसरों का उद्धारकर्ता नहीं हो सकता था।

आज भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो सत्य पर विश्वास करने से पहले चिन्ह-चमत्कार देखना चाहते हैं। लेकिन परमेश्वर चिन्ह-चमत्कार या आश्चर्यकर्मों को बांटने की आदत से मजबूर नहीं है। उसने अपना वचन प्रदान किया है, जिस पर लोगों को विश्वास करना है। पौलुस यह भी कहता है कि "यूनानी ज्ञान की खोज में रहते हैं"। यूनानी लोग किसी मानवीय ज्ञान-योजना की ताक में थे जिससे संसार की सारी परेशानियों को दूर करना सम्भव हो। इसलिए इन सांसारिक ज्ञानियों को यीशु जैसे एक निर्धन यहूदी पर विश्वास करके उद्धार पाने की बात मूर्खता प्रतीत हुई, जिसे उसी की जाति के लोगों ने अस्वीकार करके सलीब पर चढ़ा दिया था।

संसार में अब भी ऐसे लोग पाए जाते हैं जो अपने आपको परम प्रधान परमेश्वर से ज्यादा बुद्धिमान समझते हैं। बहरहाल, प्रभु परमेश्वर यह कहता है कि सुसमाचार-संदेश पर विश्वास करने के द्वारा ऐसे लोग भी उद्धार प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन प्रायः ऐसे लोग परमेश्वर के समक्ष अपनी स्वीकार्यता के लिये (मसीह के बजाय) अन्य चीजों पर भरोसा करते हैं। ऐसे लोग संसार की उत्पत्ति, परमेश्वर के साथ संगति तथा मृत्यु-पश्चात् जीवन के बारे में विभिन्न मानवीय विचारों को मानते हैं। परन्तु कड़वी सच्चाई यह है कि अपनी युक्ति या ज्ञान-बुद्धि के द्वारा कोई मनुष्य परमेश्वर (के ज्ञान) तक नहीं पहुंच सकता। परमेश्वर एवं उसके सत्य को सिर्फ उसके वचन की शिक्षा द्वारा ही जाना जा सकता है – और वह भी तब, जबकि पवित्र आत्मा हमारे अन्तर्मन में इसे प्रकट व प्रकाशित करता है।

"परन्तु उनके लिए जो बुलाए हुए हैं, चाहे वे यहूदी हों या यूनानी, मसीह परमेश्वर की सामर्थ्य और परमेश्वर का ज्ञान है" (प0कुरि0 1:24)। अविश्वासी यहूदियों और गैरयहूदियों की दृष्टि में (मसीह) यीशु एक क्रूसित किया गया धोखेबाज था। परन्तु परमेश्वर के वचन (संदेश) पर विश्वासपूर्वक आशा-भरोसा रखने के लिए, उसके द्वारा चुने गये लोगों की दृष्टि में पाप, शैतान और मृत्यु की अधीनता से उन्हें छुटकारा देने के लिए, प्रभु परमेश्वर ने (मसीह) यीशु के बलिदान (मृत्यु) द्वारा अपनी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वसामर्थी योजना को सम्पन्न किया।

"क्योंकि परमेश्वर की मूर्खता मनुष्यों के ज्ञान से अधिक ज्ञानवान है, और परमेश्वर की निर्बलता मनुष्यों के बल से अधिक बलवान है" (प0कुरि0 1:25)। जिन ईश्वरीय योजनाओं को अविश्वासी लोग मूर्खता समझते हैं, वे मनुष्य की सर्वोत्तम योजनाओं से बहुत बेहतर हैं। बेशक, अपने "एकलौते पुत्र" के शत्रुओं को **उसे** क्रूसित करने की अनुमति देना, मनुष्य की दृष्टि में मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता है; लेकिन परमेश्वर की दृष्टि में मनुष्य के अनन्त उद्धार हेतु यही बुद्धिमतापूर्ण ईश्वरीय योजना थी।

इसके बाद पौलुस यह टिप्पणी करता है : "परमेश्वर की निर्बलता मनुष्यों के बल से अधिक बलवान है"। जब **मसीह** क्रूस पर लटक रहा था, तब ऐसा लगा जैसे कि वह एक पराजित व असहाय जन है, और परमेश्वर उसे बचाने में असमर्थ है। *"और वहाँ से आने-जाने वाले उसकी निन्दा करते हुए और सिर हिला हिला कर कहने लगे, 'अरे! मंदिर को ढाने वाले और तीन दिन में बनाने वाले, अपने आप को बचा और क्रूस से उत्तर आ!' इसी प्रकार मुख्य याजक भी शास्त्रियों के साथ मिलकर आपस में उसका ठट्ठा करके यह कह रहे थे, 'इसने दूसरों को बचाया; पर अपने आप को नहीं बचा सकता। अब यह मसीह, इस्राएल का राजा, क्रूस पर से नीचे उतर आए कि हम देख कर विश्वास करें!' और वे भी जो उसके साथ क्रूस पर चढ़ाए गए थे, इसी प्रकार उसकी निन्दा कर रहे थे"* (मर0 15:29-32)। हाँ, यीशु मसीह उस क्रूस पर असहाय दिख रहा था; लेकिन उस वक्त भी, सब परिस्थितियों पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाला प्रभु परमेश्वर, मनुष्य के उद्धार हेतु, अपने

महान उपाय को पूरा कर रहा था। परम प्रधान परमेश्वर इस जगत की दृष्टि में मूर्खतापूर्ण प्रतीत होने वाली चीजों के द्वारा संसार के घमंडी अविश्वासियों के ज्ञान की व्यर्थता को बेपर्द करता है।

"हे भाइयों, अपने बुलाए जाने पर तो विचार करो कि शरीर के अनुसार तुम में से न तो बहुत बुद्धिमान, न बहुत शक्तिमान और न बहुत कुलीन बुलाए गए। परन्तु परमेश्वर ने संसार के मूर्खों को चुन लिया है कि ज्ञानवानों को लज्जित करे, और परमेश्वर ने संसार के निर्बलों को चुन लिया है कि बलवानों को लज्जित करे, और परमेश्वर ने संसार के निकृष्ट और तुच्छों को, वरन् उनको जो हैं भी नहीं, चुन लिया, कि उन्हें जो हैं व्यर्थ ठहराए, जिससे कि कोई प्राणी परमेश्वर के सामने घमंड न करे" (प0कुरि0 1:26-29)। यदि वह चाहता तो कुछेक सुन्दर एवं शक्तिशाली स्वर्गदूतों को सुसमाचार प्रचार के काम में लगा सकता था। परन्तु ऐसा करने पर लोगों का ध्यान प्रचारकों (स्वर्गदूतों) की भव्यता पर जाता, न कि प्रचारित संदेश पर। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि इस सेवकाई के लिए परमेश्वर साधारण मनुष्यों को चुनता है। जब मसीह इस धरती पर था तो उसके अधिकतर अनुयायी समाज के ऊँचे लोग नहीं थे, वे बहुत शिक्षित और धनी भी नहीं थे। हाँ, यीशु के अधिकतर प्रेरित समाज के प्रभावशाली या बहुत शिक्षित लोग नहीं थे। उनमें से अधिकतर चेले अपनी बुलाहट के समय मछुआरे का काम कर रहे थे (प्रेरित0 4:13)। प्रभु यीशु के इन प्रेरितों को उस समय के शिक्षित अगुवे (अधिकारी व शासक वर्ग) अमहत्वपूर्ण, नगण्य एवं तुच्छ समझे; लेकिन अविश्वासी संसार को अपने अनुग्रह का संदेश देने के

लिए प्रभु ने इन्हीं साधारण लोगों का इस्तेमाल किया। प्राकृतिक मनुष्य इस संसार मे ंस्व-अधीनता एवं स्वतःपर्याप्ति की मानसिकता के साथ पैदा होता है। आगे चल कर वह अपने आप को जितना अधिक समर्थ, ज्ञानवान, या समझदार मानने लगता है, उतना ही अधिक अपने जीवन में उद्धारकर्ता की आवश्यकता के प्रति अन्धा होता जाता है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि अपने सुसंदेश की घोषणा (प्रचार) करने के लिए प्रभु परमेश्वर उन लोगों को चुनता है जो संसार की दृष्टि में मूर्ख, दुर्बल, नगण्य और अज्ञानी प्रतीत होते हैं। ऐसी स्थिति में ईश्वरीय संदेश की स्वीकार्यता का श्रेय किसी मानवीय बुद्धिमत्ता, सामर्थ्य और प्रचार-क्षमता को नहीं, बल्कि मानव मन में पवित्र आत्मा के कार्य को मिलता है। इसीलिए उन्तीसवें पद में पौलुस यह लिखता है कि किसी मनुष्य को परमेश्वर के समक्ष घमंड करने का कोई कारण ही नहीं। "यदि कोई गर्व करे तो प्रभु में"।

"परन्तु उसी के कारण तुम मसीह यीशु में हो, जो हमारे लिए परमेश्वर की ओर से ज्ञान, धार्मिकता, पवित्रता और छुटकारा ठहरा, कि जैसा लिखा है, 'यदि कोई गर्व करे तो वह प्रभु में करे'" (प0कुरि0 1:30-31)। ज़रा तीसवें पद के प्रारम्भिक शब्दों पर विचार करें। "उसी (परमेश्वर) के कारण तुम मसीह यीशु में हो"। पिता परमेश्वर ने ही हमें 'मसीह में' स्थापित किया है। आगे के शब्दों पर भी ध्यान दें – परमेश्वर की ओर से मसीह यीशु ही हमारे लिए **ज्ञान, धार्मिकता, पवित्रता** एवं **छुटकारा** है। ज्ञान तभी सच्चा ज्ञान है जबकि सत्य से मेल खाए। चूंकि परम प्रधान परमेश्वर

ही परमेश्वर है, अतएव केवल वही सारे सत्य का स्रोत एवं ज्ञाता है। अतः सिर्फ वही 'सर्वज्ञानी' एवं सर्वोपरि बुद्धिमान है। उसके संदर्श या विचार से बेमेल विचार, सच्चे ज्ञान के बजाय मूर्खता कहे जाएंगे। यूहन्ना के सुसमाचार के चौदहवें अध्याय के छठवें पद में प्रभु यीशु के ये शब्द पाए जाते हैं : *"यीशु ने उस से कहा, 'मार्ग, सत्य और जीवन मैं ही हूं। बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुंच सकता'"।* यीशु ही **सत्य** है, और विश्वासी जन अब उसी में स्थापित किया जा चुका है। पवित्र आत्मा विश्वासी जन के जीवन में मसीह का जीवन विकसित (पुनरुत्पादित) करता है। जब विश्वासी जन **आत्मा** के चलाए चलता है तब ख्रीष्त-जीवन उसे परमेश्वर के सत्य को समझने एवं उससे सहमत होने की योग्यता प्रदान करता है। इसलिए मसीह यीशु हमारा **ज्ञान** है। पौलुस उपर्युक्त पद में यह भी कहता है कि मसीह यीशु हमारी **धार्मिकता** है। रोमियों की पुस्तक के छठवें अध्याय के प्रारम्भिक पदों के अनुसार, विश्वासी जन मसीह की मृत्यु, दफन और उसके पुनरुत्थान में बपतिस्मा पाया है। मसीह की मृत्यु में उसके साथ हमारा पुराना मनुष्यत्व (आदम स्वभाव या पाप-स्वभाव) क्रूसित किया गया। इसके नतीज़तन हम पाप की दैनिक गुलामी (अधीनता) से आजाद किए जा चुके हैं। जैसे पाप के प्रति मसीह की मृत्यु अब पाप के प्रति हमारी मृत्यु है, उसी प्रकार अब उसका नया (पुनरुत्थान) जीवन अब हमारा नया जीवन-आधार है। परमेश्वर की दृष्टि में मसीह पूर्णतः धर्मी है, और उसमें स्थापित किया गया विश्वासी जन भी परमेश्वर की दृष्टि में उसी धार्मिकता से विभूषित है।

इसके बाद पौलुस ने मसीह को हमारी **पवित्रता** कहा है। चूंकि मसीह में हमारा स्थापन हो चुका है, अतएव यीशु हमारी पवित्रता है। हमें मसीह यीशु का जीवन प्रदान किया गया है और इसमें उसकी पवित्रता भी शामिल है। परमेश्वर की दृष्टि में विश्वासी लोग उसकी पवित्र एवं निष्कलंक संतान हैं (इफि0 1:4)। जैसे-जैसे हम **आत्मा** के चलाए जीवन व्यतीत करते हैं और मसीह का जीवन हमारे जीवन में विकसित एवं व्यवहारिक रूप लेता जाता है, वैसे-वैसे हमारा जीवन पवित्रता का जीवन आचरण होता जाता है। सच्ची पवित्रता का स्रोत केवल प्रभु का जीवन ही है। अन्ततः पौलुस ने मसीह यीशु को हमारा छुटकारा (क्षतिपूर्ति, विमोचन, प्रायश्चित, पुनः प्राप्ति या मुक्ति) बताया है। इसका मतलब 'हरजाना, जुर्माना या दण्ड-मूल्य देकर मुक्त करना' है। अब विश्वासी जन नरक, शैतान, पाप-दंड, न्याय तथा पाप की दैनिक अधीनता से मुक्त किया जा चुका है; और अब वह 'मसीह में' स्थापित हो चुका है। इसके फलस्वरूप अब वह मसीह के ज्ञान, धार्मिकता, पवित्रता एवं छुटकारे को पा चुका है। ऐसी आशीषपूर्ण अवस्था में अब हम विश्वासी जन केवल **परमेश्वर** पर तथा **पापी मनुश्य के प्रति उसके अथाह अनुग्रह** पर ही घमंड कर सकते हैं।

तीन

"भाइयों, जब मैं तुम्हारे पास परमेश्वर के विषय में गवाही देता हुआ आया तो शब्दों या ज्ञान की उत्तमता के साथ नहीं आया। क्योंकि मैंने यह ठान लिया था कि तुम्हारे बीच यीशु मसीह वरन् क्रूस पर चढ़ाए गए मसीह को छोड़ और किसी बात को न जानूं। मैं निर्बलता और भय के साथ थरथराता हुआ तुम्हारे साथ रहा। मेरा संदेश और मेरा प्रचार ज्ञान के लुभाने वाले शब्दों में नहीं था, परन्तु आत्मा और सामर्थ्य के प्रमाण में था, जिससे कि तुम्हारा विश्वास मनुष्यों के ज्ञान पर नहीं परन्तु परमेश्वर की सामर्थ्य पर आधारित हो" (प0कुरि0 2:1-5)। कुरिन्थुस के विश्वासियों को पौलुस यह याद दिला रहा था कि मूलतः उन्होंने अपने जीवन में पवित्र आत्मा के कार्य एवं सुसमाचार के सामर्थ्य के कारण (रोमियों 1:16) मसीह पर विश्वास किया था, न कि पौलुस के ज्ञान या वाक्पटुता के कारण; क्योंकि वह तो दुर्बल, भयभीत और अप्रभावशाली था। कुरिन्थुस की मंडली के विश्वासियों का विश्वास परमेश्वर की सामर्थ्य पर आधारित था, न कि मनुष्यों के ज्ञान-बुद्धि की बातों पर। उनकी अन्तरात्मा में मसीह तथा उसके क्रूसित होने सम्बन्धी सत्य को पवित्र आत्मा ने प्रकाशित किया था एवं अपनी सामर्थ्य को प्रकट किया था। गलातियों 5:20 के शारीरिकता के फलों की सूची में **मतभेद** और **फूट** भी शामिल हैं। यहाँ 'मतभेद और फूट' को **सत्य** से असहमत या भिन्न विचार भी कहा जा सकता है। शारीरिकता के अधीन हम सत्य के बारे में 'अपने खास मत या विचारों' की ही शिक्षा देने के बहुत

अभिलाषी रहते हैं, और ऐसी अवस्था में पवित्र आत्मा की सामर्थ्य के बजाय हम अपने ज्ञान-बुद्धि और आकर्षक भाषण-कला पर ज्यादा भरोसा करते हैं। इसके विपरीत, **आत्मा** के चलाए जाने पर हम इस सच्चाई के प्रति जागरूक रहते हैं कि यह परमेश्वर की सेवकाई है जो कि लोगों के मन में **पवित्र आत्मा** द्वारा सत्य-संचार पर निर्भर करती है, न कि हमारे प्रचार-पद्धति या उपदेश पर। हमारा दायित्व सिर्फ सत्य-संदेश को लोगों तक पहुँचाना है, इसके आगे हमें पवित्र आत्मा पर भरोसा करना है कि वह जैसा सही समझता है, उस प्रकार इस संदेश को लोगों के जीवन में सार्थक बनाएँ। दूसरे अध्याय के तीसरे पद में पौलुस यह कहता है कि उसने उनके मध्य 'निर्बलता व भय' के साथ सुसमाचार-शिक्षा दिया। अपने विश्वासी से प्रभु परमेश्वर ऐसी ही जीवन-शैली की आशा करता है – अर्थात् (प्रभु के बिना) अपने जीवन की निर्बलता एवं असमर्थता को पहचानते हुए जीना। जिस हद तक हम स्वयं को ज्ञानवान, बलवान और बेहतर समझेंगे, उस हद तक (परमेश्वर पर आश्रित रहने के बजाय) हम अपने आप पर ही भरोसा रखेंगे।

"जिससे कि तुम्हारा विश्वास मनुष्यों के ज्ञान पर नहीं परन्तु परमेश्वर की सामर्थ्य पर आधारित हो" (प0कुरि0 2:5)। इसीलिए पौलुस ने वचन की शिक्षा देने के लिए पवित्र आत्मा पर भरोसा किया, अपनी क्षमताओं पर नहीं; क्योंकि वह जानता था कि केवल पवित्र आत्मा ही सत्य के प्रति लोगों के मन को कायल कर सकता है। यदि सुसमाचार पर लोगों का विश्वास हमारे प्रचार की निपुणता के कारण है, तो लोगों के लिए आगे चल कर हमसे ज्यादा निपुण प्रचारक की शिक्षा का अनुयायी होने का प्रलोभन होगा। परन्तु पवित्र

आत्मा द्वारा सुसमाचार की सत्यता के प्रति कायल किए जाने पर विश्वासी अपने विश्वास में स्थिर रहेगा।

"फिर भी हम समझदारों में ज्ञान की बातें सुनाते हैं, परन्तु यह ज्ञान न तो इस युग का और न ही इसके शासकों का है जो मिटने वाले हैं" (प0कुरि0 2:6)। जिस परमेश्वर के वचन के प्रचार को संसारी लोग मूर्खता मानते हैं, वास्तव में वही परमेश्वर का ज्ञान (ईश्वरीय बुद्धिमता) है। यह ज्ञान-बुद्धि सांसारिक ज्ञान-बुद्धि से भिन्न है। इस परमेश्वर के ज्ञान को सिर्फ वह लोग समझते हैं जिन पर पवित्र आत्मा इसे प्रकट (प्रकाशित) करता है। ईश्वरीय ज्ञान-बुद्धि को सिर्फ आध्यात्मिक तौर से ही समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ, यूहन्ना की पुस्तक के इन शब्दों पर ध्यान दें : *"मैं तुमसे सच कहता हूँ, जो विश्वास करता है, अनन्त जीवन उसी का है। जीवन की रोटी मैं हूं। तुम्हारे पूर्वजों ने जंगल में मन्ना खाया और वे तो मर गए। यह वही रोटी है जो स्वर्ग से उतरती है कि जो कोई उसमें से खाए वह न मरे। जीवित रोटी जो स्वर्ग से उतरी, मैं हूं। यदि कोई इस रोटी में से खाए तो वह सर्वदा जीएगा, और जो रोटी मैं जगत के जीवन के लिए दूंगा वह मेरा मांस है। इस पर यहूदी आपस में यह कह कर विवाद करने लगे, 'यह मनुष्य हमें अपना मांस खाने को कैसे दे सकता है'? इसके परिणामस्वरूप उसके शिष्यों में से बहुत-से वापस चले गए और फिर उसके साथ नहीं चले। इसलिए यीशु ने उन बारहों से कहा, 'क्या तुम भी चले जाना चाहते हो'? शमौन पतरस ने उसे उत्तर दिया, 'प्रभु हम किसके पास जाएं? अनन्त जीवन की बातें तो तेरे पास हैं। हमने*

विश्वास किया है और जान लिया है कि परमेश्वर का पवित्र जन तू ही है'" (यूह0 6:47–52; 66–69)। प्रभु यीशु ने जब यह कहा कि "जीवन की रोटी मैं हूं", तब अधिकतर लोग उसकी बात को नहीं समझे और उसे छोड़कर वापस चले गए। लेकिन इसके विपरीत उपर्युक्त पंक्तियों में पतरस की बात पर ध्यान दें, क्योंकि पवित्र आत्मा उसकी अन्तरात्मा में सत्य को प्रकाशित किया था।

"परन्तु हम परमेश्वर के उस ज्ञान के रहस्य का वर्णन करते हैं अर्थात् उस गुप्त-ज्ञान का जिसे परमेश्वर ने सनातन से हमारी महिमा के लिए ठहराया, जिस ज्ञान को इस युग के शासकों में से किसी ने न समझा : यदि वे समझ गए होते तो महिमा के प्रभु को क्रूस पर न चढ़ाते। पर जैसा लिखा है, 'जिन बातों को आंख ने नहीं देखा और न कान ने सुना, और जो मनुष्य के हृदय में नहीं समाईं, उन्हीं को परमेश्वर ने अपने प्रेम करने वालों के लिए तैयार किया है'। परन्तु परमेश्वर ने उन्हें आत्मा द्वारा हम पर प्रकट किया, क्योंकि आत्मा सब बातों को यहां तक कि परमेश्वर की गूढ़ बातों को खोजता है" (प0कुरि0 2:7–10) परमेश्वर के जिस ज्ञान-बुद्धि की बात की जा रही है (और जिसका हम प्रचार करते हैं), वह सृष्टि के पूर्व से ही स्थापित है। परमेश्वर के इस ज्ञान को संसार के शासक लोग भी (अर्थात् जिन्हें सबसे ज्ञानवान एंव महत्वपूर्ण समझा जाता है) नहीं समझते। यदि यीशु के समय के शासक इस ईश्वरीय ज्ञान-बुद्धि को समझे होते तो **मसीह** पर विश्वास करते, न कि उसका तिरस्कार एवं कत्ल। इस ईश्वरीय ज्ञान में ऐसी अद्‌भुत एवं आश्चर्यपूर्ण सच्चाईयां पायी जाती हैं जिनके बारे में न तो मनुष्य ने

कभी सुना है, न कभी सोचा है और न ही कभी किसी ने देखा है। दसवें पद से सुस्पष्ट है कि विश्वासीजन इस ज्ञान को इसलिए जानता-समझता है, क्योंकि पवित्र आत्मा ने (जो परमेश्वर के गहन विचारों को जानता है) इसे उस पर प्रकट किया है। इतना ही नहीं बल्कि जो पवित्र आत्मा, पिता परमेश्वर को पूर्णरूपेण जानता-समझता है और उसके ज्ञान को पहचानता है, वही **आत्मा** हमें प्रदान किया गया है ताकि हम भी परमेश्वर के ज्ञान को जान सकें। *"मुझे तुमसे और भी बहुत सी बातें कहनी हैं, परन्तु तुम अभी उन्हें सहन नहीं कर सकते। परन्तु जब वह, अर्थात् सत्य का आत्मा आएगा, तो वह तुम्हें सब सत्य का मार्ग बताएगा, क्योंकि वह अपनी ओर से कुछ नहीं कहेगा, परन्तु जो कुछ सुनेगा, वही कहेगा, और आने वाली बातों को तुम पर प्रकट करेगा। वह मेरी महिमा करेगा, क्योंकि वह मेरी बातों को लेकर तुम पर प्रकट करेगा"* (यूहन्ना 16:12-14) हां, केवल पवित्र आत्मा ही ईश्वरीय गहराईयों को पूर्णरूपेण जानता है। केवल वही परमेश्वर के सत्य में हमारी अगुवाई करता है। अतएव विश्वासी जन के लिए ईश्वरीय सच्चाईयों को जानने की कोई सीमा नहीं है। प्रभु यीशु मसीह के अनुग्रह एवं ज्ञान में विकसित होने के मार्ग में केवल हमारी शारीरिकता अर्थात् हमारा आदम स्वभाव (पाप-स्वभाव) ही बाधक है।

"मनुष्यों में से कौन किसी मनुष्य के विचारों को जानता है, केवल उस मनुष्य की आत्मा के जो उसमें है? इसी प्रकार परमेश्वर की आत्मा को छोड़ परमेश्वर के विचार कोई नहीं जानता। हमने संसार की आत्मा नहीं, परन्तु वह आत्मा पायी है जो परमेश्वर की

ओर से है, जिससे कि हम उन बातों को जान सकें जिन्हें परमेश्वर ने हमें सेंतमेंत दिया है। उन्हीं को हम मनुष्यों के ज्ञान के सिखाए हुए शब्दों में नहीं, परन्तु आत्मा के सिखाए हुए शब्दों में, अर्थात् आत्मिक विचारों को आत्मिक शब्दों से मिलाकर व्यक्त करते हैं" (प0कुरि0 2:11-13)। जैसे किसी मनुष्य के अन्दर छिपी हुई बातों को सिर्फ उस मनुष्य की आत्मा ही जानती है, उसी प्रकार परमेश्वर के अप्रकट, रहस्यपूर्ण, गूढ़ एवं गुप्त ज्ञान को केवल उसका पवित्र आत्मा ही जानता है। इसलिये केवल पवित्र आत्मा ही उसकी सच्चाईयों को हम पर प्रकट कर सकता है। परमेश्वर की ओर से हमें मुफ्त में प्रदान की गई आत्मिक आशिषों की महानता को मनुष्य की बुद्धि नहीं समझ सकती। इन सच्चाईयों को समझने के लिए हमारी अन्तरात्मा में पवित्र आत्मा द्वारा संचार-कार्य होना (समझाया जाना) जरूरी है।

"परन्तु शारीरिक मनुष्य परमेश्वर के आत्मा की बातों को ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वे उसके लिए मूर्खतापूर्ण हैं और वह उन्हें समझ नहीं सकता, क्योंकि उनकी परख आत्मिक रीति से होती है। आत्मिक जन सब कुछ परखता है, परन्तु वह स्वयं किसी मनुष्य के द्वारा परखा नहीं जाता। क्योंकि प्रभु का मन किसने जाना है कि उसे सिखाए? परन्तु हम में मसीह का मन है" (प0कुरि0 2:14-16)। प्राकृतिक (अनाध्यात्मिक, सांसारिक या स्वाभाविक) मनुष्य वह अविश्वासी है, जो अपने भोग विलासी स्वभाव की अधीनता में संसारिक व इन्द्रियगत अभिलाषाओं की पूर्ति में लगा रहता है। शारीरिकता के अधीन जीवन व्यतीत करने वाला विश्वासी

भी अपने पुराने पाप-स्वभाव के नियंत्रण में जीता है और अपनी स्वार्थपूर्ण अभिलाषाओं को पूरा करने में ध्यान लगाता है। अतः शारीरिकता में जीवन व्यतीत करने वाला मनुष्य परमेश्वर की बातों को समझने में इसलिए असमर्थ होता है, क्योंकि (ग्यारहवें से तेरहवें पदों के अनुसार) परमेश्वर सम्बन्धी सच्चाईयों को केवल उसके पवित्र आत्मा द्वारा ही समझना सम्भव है। "शरीर" के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति (चाहे वह शारीरिक विश्वासी हो या अविश्वासी जन) अपने शारीरिक मन-मस्तिष्क के भरोसे ही सब कुछ समझना चाहता है, जबकि **आत्मा** के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति (पवित्र) आत्मा पर आश्रित होकर सत्य को समझना चाहता है, और पवित्र आत्मा परमेश्वर की गूढ़ सच्चाईयों से सुपरिचत है। सोलहवें पद में पौलुस की बात पर ध्यान दीजिए। वहाँ लिखा है : "हम में मसीह का मन है"।

उद्धार प्राप्ति के समय हमें मसीह का जीवन प्रदान किया गया। पवित्र आत्मा के चलाए चलने पर हमारे जीवन द्वारा ख्रीष्त-जीवन प्रवाहित होगा और हम अपने 'मन के आत्मिक स्वभाव में नये होते जाएंगे' (इफि0 4:23)। चूंकि हमें मसीह का जीवन प्रदान किया गया है, अतएव हमें उसका **मन** भी प्रदान किया गया है। आत्मा के चलाए चलने पर हम उसके दृष्टिकोण के ज्ञान-अनुभव में बढ़ते हैं। इसके विपरीत शारीरिकता के अधीन होने पर हम सिर्फ अपनी शारीरिक, स्वार्थपूर्ण एवं अहंकारपूर्ण सोच-समझ में ही लगे रहेंगे।

चार

"भाइयों, मैं तुमसे ऐसे बातें न कर सका जैसे आत्मिक लोगों से, परन्तु जैसे शारीरिक लोगों से, और उनसे जो मसीह में बालक हैं। मैंने तुम्हें दूध पिलाया – अन्न नहीं खिलाया क्योंकि तुम इसे पचा नहीं सकते थे। वास्तव में, तुम अभी तक पचा नहीं सकते, क्योंकि तुम अब तक शारीरिक हो। जबकि तुम में द्वेष और झगड़े हैं, तो क्या तुम शारीरिक नहीं? और क्या तुम्हारा आचरण साधारण मनुष्यों की तरह नहीं? क्योंकि जब एक कहता है, 'मैं पौलुस का हूं', और दूसरा, 'मैं अपुल्लोस का हूं', तो क्या तुम मनुष्य ही न हुए?" (प0कुरि0 3:1-4)। इस पत्री के पहले अध्याय में पौलुस ने वहाँ की मंडली को यह बताया कि वह उनके मध्य मतभेद एवं विभाजन के बारे में सुन चुका है। अब तीसरे अध्याय में वह उन्हें यह समझा रहा है कि उनके मध्य समस्याएं क्यों हैं? तीसरे अध्याय के पहले पद पर ध्यान दें। पौलुस कहता है कि वह उनसे "आत्मिक लोगों अर्थात् आत्मा द्वारा चलाए जाने वाले लोगों" की तरह बात नहीं कर सका, क्योंकि वे शारीरिकता के चलाए चल रहे थे। यहाँ दूसरे अध्याय के तेरहवें-चौदहवें पदों की बात को भी स्मरण रखना है – सत्य को अपनाने सम्बन्धी बात। अर्थात् आत्मिक सच्चाईयों को सिर्फ आत्मिक तौर पर ही समझा जा सकता है। इन्हें समझने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य की आत्मा में ये सच्चाईयाँ पवित्र आत्मा द्वारा संचारित, संप्रेषित या समझाई जाएं। चूंकि उस मंडली के विश्वासी लोग शारीरिकता में आचरण कर रहे थे और

पवित्र आत्मा की संगति-सहभागिता (या नियंत्रण) में जीवन आचरण नहीं कर रहे थे, अतएव उनकी अन्तरात्मा में आत्मिक सत्य का सम्प्रेषण सम्भव नहीं था।

अब उन्हें उन बुनियादी सच्चाईयों को सिखाना जरूरी हो गया था, जिन सच्चाईयों का ज्ञान उन्हें बहुत पहले से ही होना था। परमेश्वर की दृष्टि में (या सैद्धान्तिक तौर पर) कुरिन्थुस के विश्वासी आत्मिक थे, क्योंकि उन्हें उद्धार प्राप्त हो चुका था। परन्तु व्यवहारिक तौर पर यानी इहलौकिक दृष्टि से आत्मिक नहीं थे। हां, वे नया जन्म एवं पवित्र आत्मा पाए विश्वासी थे, लेकिन दैनिक जीवन आचरण में शारीरिकता (पुराने आदम स्वभाव) के चलाए जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसलिए पौलुस उन्हें आत्मिक लोगों जैसी शिक्षा (भोजन) नहीं दे पा रहा था।

तीसरे अध्याय के तीसरे पद में पौलुस यह कहता है कि वह उन्हें भोजन के रूप में **अन्न** के बजाय अब तक **दूध** ही देता आ रहा है; क्योंकि शिशु केवल दूध ही पचा पाते हैं। इस प्रकार पौलुस यह कह रहा है कि वे सत्य को ग्रहण करने एवं समझने के संदर्भ में अब तक आत्मिक बच्चों जैसे ही थे। उनके मध्य मतभेद या फूट उनकी शारीरिकता या सांसारिक मनोवृत्ति के परिचायक थे (गला0 5:19–21)। इस पत्री के लिखने के समय तक उस मंडली के लोग लगभग छः वर्ष से विश्वासी थे। अब तक उन्हें 'मसीह में अपनी आत्मिक पहचान' सम्बन्धी सच्चाईयों को अपनाने में बहुत आगे होना था, अर्थात् उन सच्चाईयों को जिन्हें आत्मिक तौर पर ही समझा जा सकता है।

"तो फिर अपुल्लोस क्या है? और पौलुस क्या है? केवल सेवक, जिनके द्वारा तुमने विश्वास किया, जैसा कि प्रभु ने प्रत्येक

को अवसर प्रदान किया। मैंने बोया, अपुल्लोस ने सींचा, परन्तु परमेश्वर ने बढ़ाया। अतः न तो बोने वाला कुछ है, और न ही सींचने वाला, परन्तु बढ़ाने वाला परमेश्वर ही सब कुछ है। बोने वाला और सींचने वाला दोनों एक समान हैं, परन्तु प्रत्येक अपने ही परिश्रम के अनुसार प्रतिफल पाएगा" (प0कुरि0 3:5-8) इन पदों की भाषा से कुरिन्थुस की मंडली के विश्वासियों की अपरिपक्वता बिल्कुल बेपर्द है। कुरिन्थुस के विश्वासियों को जो बातें बहुत पहले से ही जाननी, समझनी एवं व्यवहारिक तौर पर अपनानी थीं, उन बातों को उन्हें बताने के लिए अब पौलुस को पुनः समय एवं शक्ति लगानी पड़ रही थी। यदि उस मंडली के लोग **आत्मा** के चलाए जीवन बिताते तो फूट एवं मतभेद की समस्या से मुक्त होते। रोचक है कि **पवित्र आत्मा के फलों** की सूची में **शांति** भी शामिल है, और शांति द्वारा एकता को बढ़ावा मिलता है, विभाजन को नहीं। चूंकि वे **शारीरिकता** में जी रहे थे, इसलिए उनकी गलतियों (बुराईयों) को दर्शाते हुए पौलुस ने उनके शारीरिकतापूर्ण जीवन को बेपर्द किया।

प्रत्येक परिपक्व मसीही यह जानता है कि (ईश्वरीय सेवा-संदर्भ में) मनुष्य को 'ऊँचा उठाना' अर्थात् अतिप्रशंसा या अनावश्यक गुणगान ठीक नहीं है। परमेश्वर बगैर मनुष्य कुछ नहीं– न तो कुछ जानता है और न ही कुछ कर सकता है। कुरिन्थुस के विश्वासियों को यह साधारण सच्चाई भी समझानी पड़ी। वे ऐसे मसीही शिशु के समान व्यवहार कर रहे थे जैसे कि उन्हें मसीही शिक्षा कभी मिली ही न हो। अतः पौलुस ने यह समझाया कि सुसमाचार प्रचार-सेवा तथा परमेश्वर के संतानों की शिष्यता-प्रशिक्षण

की सेवकाई परमेश्वर का काम (सेवकाई) है। परमेश्वर अपने काम में अपने **सेवकों** को इस्तेमाल करता है। किसी के द्वारा बुआई का काम करता है और किसी के द्वारा सिंचाई का काम। अन्ततः स्वयं प्रभु परमेश्वर ही विकास प्रदान करता है। समय आने पर जमीन तैयार करा कर बुआई होती है। फसल उगने के लिए जमीन की तैयारी, बीज की बुआई और समय पर सिंचाई; यह सब महत्वपूर्ण कार्य हैं। लेकिन अन्ततः केवल प्रभु परमेश्वर ही फसल को बढ़ा सकता है। हम विश्वासियों (सेवकों) के लिए भी यही बात सच है। पिता परमेश्वर द्वारा हम में से कुछ लोग **बुआई** (सुसमाचार-प्रचार) के लिए और अन्य कुछ लोग **सिंचाई** (शिष्यता-सेवा) के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। अन्ततः हम सब एक ही उद्देश्य हेतु कार्यरत हैं, और इस सेवा-कार्य में केवल प्रभु परमेश्वर ही विकास-वृद्धि (फल या आत्मिक उन्नति) प्रदान करता है। इसीलिए हमारा भरोसा सिर्फ प्रभु परमेश्वर पर होना चाहिए, न कि अपने आप पर।

"बोने वाला और सींचने वाला दोनों एक समान हैं, प्रत्येक अपने ही परिश्रम के अनुसार प्रतिफल पाएगा। क्योंकि हम परमेश्वर के सहकर्मी हैं; तुम परमेश्वर का खेत हो और परमेश्वर का भवन हो। परमेश्वर के उस अनुग्रह के अनुसार जो मुझे प्रदान किया गया है, मैंने एक कुशल राजमिस्त्री की भांति नींव डाली, और दूसरा उस पर रद्दा रखता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति सावधान रहे कि वह उस पर कैसा रद्दा रखता है। क्योंकि उस नींव को छोड़ जो पड़ी है – और वह यीशु मसीह है – कोई दूसरी नींव नहीं डाल सकता।

यदि कोई मनुष्य इस नींव पर सोना, चांदी, बहुमूल्य पत्थर, काठ या घास-फूस से निर्माण करे, तो प्रत्येक मनुष्य का कार्य प्रकट हो जाएगा। वह दिन उसे दिखाएगा, क्योंकि वह दिन अग्नि के साथ प्रकट किया जाएगा, और वह अग्नि ही प्रत्येक मनुष्य के कार्य को परखेगी। यदि किसी मनुष्य का निर्मित कार्य जो उसने किया है स्थिर रहेगा तो उसे प्रतिफल मिलेगा। यदि किसी व्यक्ति का कार्य जल जाएगा तो वह हानि उठाएगा, परन्तु वह स्वयं बच जाएगा, फिर भी मानो आग से जलते-जलते" (प0कुरि0 3:8-15)। यहां पौलुस यह दर्शाता है कि परमेश्वर के प्रत्येक सेवक को ईश्वरीय सेवकाई (सुसमाचार-प्रचार एवं शिष्यता) में सतर्कतापूर्वक "निर्माण" (शिक्षा या शिष्यता) का कार्य करना है। क्या हम शारीरिक मनुष्य के ज्ञान-बुद्धि के अनुसार सेवा-कार्य (निर्माण) कर रहे हैं या उस सत्य के अनुसार जिसे पवित्र आत्मा हमारे अन्तरात्मा में सम्प्रेषित करता है, संचारित करता है या समझाता है। इस प्रसंग में पौलुस द्वारा रोमियों की पत्री के आठवें अध्याय के पांचवे-छठवें पदों की बात भी विचारणीय है। शारीरिकता परमेश्वर से अलगाव (मृत्यु) को बढ़ावा देती है। (पवित्र) आत्मा जीवन और शांति को बढ़ावा देती है।

तीसरे अध्याय के ग्यारहवें पद में पौलुस यह कहता है कि केवल एक ही सच्ची "**नींव**" डाली जा सकती है अर्थात् प्रभु यीशु मसीह। प्रभु यीशु द्वारा पूर्ण किए गए कार्य रूपी **नींव** पर दो में से एक ही तरीके से हम "निर्माण" कर सकते हैं : या तो शरीर के अनुसार, या फिर आत्मा के अनुसार। यह स्वतः स्पष्ट हो जाएगा

कि हमने **आत्मा के अनुसार** निर्माण (सेवा-कार्य) किया है या **शरीर के अनुसार**।

जब हम शारीरिकता के अनुसार **निर्माण** करते हैं तो पवित्र आत्मा द्वारा सत्य सीखने पर आश्रित होने के बजाय हमारा मन पार्थिव चीजों एवं संसारिक ज्ञान-बुद्धि पर टिका (आश्रित) होगा। पार्थिव मानसिकता एवं मनोवृत्ति में लवलीन होने पर हम पवित्र आत्मा द्वारा सत्य सीखने (ग्रहण करने) में असमर्थ होंगे और इसके फलस्वरूप दूसरे लोगों को सत्य-शिक्षा देने में भी असमर्थ होंगे। हां, आत्मिक विकास की नकल करके दूसरों को भी ऐसी नकल के लिए उकसाना सम्भव है। लेकिन ऐसी आत्मिकता (या आत्मिक विकास) नकली होने के कारण तथा शारीरिकता जन्य होने के कारण परमेश्वर को ग्रहण योग्य नहीं होगी– भले ही "चमकदार" दिखायी दे। इसके विपरीत यदि हम **आत्मा के अनुसार** निर्माण करते हैं तो हमारा मन स्वर्गिक बातों पर केन्द्रित होगा, और हमारा जीवन-व्यवहार पवित्र आत्मा के फलों को प्रदर्शित करेगा (गला0 5:22-24)। पहला कुरिन्थियों के दूसरे अध्याय के बारहवें-तेरहवें पदों के अनुसार, हमें आत्मिक सच्चाईयाँ **आत्मा** से प्राप्त होती हैं। अतः **आत्मा** के अधीन निर्माण से सच्चा आत्मिक विकास होगा। ऐसे आध्यात्मिक विकास का स्त्रोत पवित्र **आत्मा** है, और परमेश्वर को स्वीकार्य है।

पाँच

"यह वास्तव में सुनने में आया है कि तुम्हारे मध्य व्यभिचार होता है, और ऐसा व्यभिचार जो ग़ैरयहूदियों में भी नहीं होता, अर्थात् एक मनुष्य अपने पिता की पत्नी को रखता है। पर तुम घमंड से फूल गए हो, और तुम इसके बदले शोकित नहीं होते जिससे कि ऐसा कार्य करने वाला तुम्हारे मध्य से निकाला जाता" (प0कुरि0 5:1-2)। अब पौलुस यह कहता है कि उसने कुरिन्थुस की मंडली में व्यभिचार होने की बात सुनी है। इतना ही नहीं, उनके मध्य घिनौने व्यभिचार की बात सुनने में आयी है – "अर्थात् एक मनुष्य अपने पिता की पत्नी को रखता है"। चूंकि उस मंडली के लोग शारीरिकता में जीवन व्यतीत कर रहे थे, इसलिए ऐसे घिनौने व्यभिचारी के साथ उपयुक्त व्यवहार अर्थात् सेवा-परामर्श प्रदान करने में भी असमर्थ थे। यदि मंडली के विश्वासी आत्मिक तौर पर और अधिक परिपक्व होते तो उस व्यभिचारी को ईश्वरीय सहभागिता में प्रोत्साहित करने हेतु उसे प्रेमपूर्वक अनुशासित करते। शारीरिकता में होने के कारण उन विश्वासियों में उस व्यभिचारी के (आत्मिक) सुधार के लिए कोई चिन्ता नहीं थी। इसके विपरीत, यदि वे **आत्मा** के अनुसार जीवन जी रहे होते तो, उनमें "मसीह का मन" होने के कारण, उस व्यभिचारी की अवस्था को मसीह की दृष्टि से देखते (पाप से घृणा, पापी से प्रेम) और उसके आत्मिक सुधार के लिए निःस्वार्थ भावना से तत्पर रहते।

"जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है यद्यपि मैं शरीर में तो नहीं फिर भी आत्मा में तुम्हारे मध्य उपस्थित हूं, और मानो उपस्थित रहकर ऐसे घृणित कार्य करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध अपनी ओर से यह निर्णय दे चुका हूं कि जब तुम हमारे प्रभु यीशु के नाम में एकत्रित हो, और आत्मा में मैं भी तुम्हारे साथ, तो हमारे प्रभु यीशु की सामर्थ्य से" (प0कुरि0 5:3-4)। पौलुस पुनः स्पष्ट करता है कि पाप करने वाले (व्यभिचारी) विश्वासी के आत्मिक सुधार सम्बन्धी निर्णय के समय सिर्फ अगुवों को नहीं बल्कि सारी मंडली को एक **देह** के तौर पर एकत्रित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति के प्रति उनकी आत्मिक सेवकाई (अनुशासन, परामर्श या निर्णय) मसीह यीशु के नाम एवं उसके अधिकार के अधीन होनी है। प्रभु यीशु के नाम व अधिकार के अधीन किए जाने वाले कार्य (निर्णय) के बारे में यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे कार्य (निर्णय) से उसका (अर्थात् प्रभु यीशु का) सहमत होना आवश्यक है। जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि विश्वासियों को 'मसीह का मन' प्रदान किया गया है। लेकिन पवित्र आत्मा के अधीन आचरण किए बगैर हम मसीह के मन की एकता में नहीं होते। शारीरिकता के अनुसार जीवन व्यतीत करते समय हम शारीरिकता के साथ एक मन होते हैं, और प्रत्येक चीज को अपनी शारीरिकता की नज़र से देखते हैं। इसके विपरीत, जब मंडली के विश्वासी (पवित्र) **आत्मा** की अधीनता में होते हैं, तब वे 'मसीह के मन' की एकता में होंगे और इस प्रकार प्रभु की इच्छा को जानते हुए कलीसिया के मध्य कुकर्मी के प्रति मसीह के नाम एवं उसके अधिकार के अनुसार सही सेवकाई (अनुशासन, परामर्श या निर्णय) प्रदान कर सकेंगे। गलातियों की पत्री में पौलुस के इन

गम्भीर शब्दों पर भी ध्यान दें कि मंडली में पाप करने वालों के प्रति कैसे व्यवहार करना है : *"हे भाइयों, यदि कोई मनुष्य किसी अपराध में पकड़ा भी जाय तो तुम जो आत्मिक हो नम्रतापूर्वक उसे सम्भालो, परन्तु सतर्क रहो कि कहीं तुम भी परीक्षा में न पड़ जाओ"* (गला0 6:1)।

मंडली में किसी विश्वासी के पाप में गिर जाने पर उसके प्रति हमारी सेवकाई (अनुशासन, परामर्श या निर्णय) का प्रमुख उद्देश्य उस व्यक्ति की आत्मिक पुर्नस्थापना (रेस्टोरेशन, **सम्भालना**, आत्मिक स्वस्थता, आत्मिक सुधार) होना चाहिए, न कि उसका न्याय करना या दोषी ठहराना। गलातियों के उपर्युक्त पद में पौलुस के शब्दों पर ध्यान दीजिए। वह लिखता है कि "जो आत्मिक" हैं यानि **आत्मा** के चलाए चल रहे हैं, वही ऐसे लोगों को आत्मिक तौर से सम्भाल सकते हैं। बात बिल्कुल साफ है, जो लोग स्वयं शारीरिकता के अधीन अर्थात् परमेश्वर की सुसंगति बगैर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, वे दूसरों को आत्मिक तौर पर कैसे संभाल सकते हैं। शारीरिकता में जीवन बिताने वाला व्यक्ति पाप में गिरे अन्य विश्वासी भाई के प्रति आलोचना करने व दोष लगाने की मनसा से पेश आएगा और प्रेमपूर्ण व्यवहार करने के बजाय अपने आप को उंचा उठाने तथा उस भाई को नीचा दिखाने की कोशिश में रहेगा। इसके विपरीत, पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति 'मसीह के प्रेम द्वारा विवश' (नियंत्रित) होता है। ऐसा आत्मिक जन पाप में गिरे विश्वासी भाई-बहन को परमेश्वर की सुसंगति में पुर्नस्थापित करने (आत्मिक सुधार व सम्भालने) में गहरी रुचि रखता है।

"ऐसा मनुष्य शरीर के विनाश के लिए शैतान को सौंपा जाए, कि उसकी आत्मा प्रभु यीशु के दिन में उद्धार पाए" (प0कुरि0 5:5)। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि इस पद की बात गलातियों की पत्री के छठवें अध्याय के उपर्युक्त पद के विपरीत है। परन्तु ध्यान दें कि इस व्यभिचारी (विश्वासी) को शैतान के हवाले करने का प्रमुख उद्देश्य क्या है? ऐसा लगता है कि इस कुकर्मी का मन इतना कठोर हो गया था कि वह कलीसियाई (आत्मिक) सेवा, सहायता एवं सलाह को अपने जीवन में नहीं अपनाना चाहता था। इसलिए पौलुस ने कुरिन्थुस की कलीसिया से कहा कि मंडली की आत्मिक सहायता, अनुशासन रूपी सेवा-परामर्श को नही ंचाहने वाले व्यभिचारी जन को (स्थानीय) मंडली से बहिष्कृत करना होगा और शैतान को इस्तेमाल करके प्रभु परमेश्वर उसके भौतिक (शारीरिक) जीवन का "**विनाश**" कर सकता है। पाप में गिरे उस विश्वासी को उसकी शारीरिकता की भ्रष्टता को दर्शाना तथा उसके जीवन की आत्मिक पुर्नस्थापना ही इस विनाश का प्रमुख उद्देश्य है। किसी बाइबॅल विद्वान ने इस पद का कुछ इस प्रकार भावानुवाद किया है: "ऐसे व्यक्ति को भौतिक (शारीरिक) अनुशासन हेतु (उन शारीरिक लालसाओं के विनाश हेतु जिनके उकसाने से उसने कौटुम्बिक व्यभिचार किया) शैतान को सौंप दें, ताकि उसकी आत्मा प्रभु यीशु के दिन उद्धार पा सके"।

कलीसियाई (आत्मिक) अनुशासन का उद्देश्य किसी विश्वासी को उसके पाप के लिए दंडित (न्याय) करना नहीं है। यह (पाप-दंड का) कार्य मसीह यीशु ने कलवरी के क्रूस पर अपनी

मृत्यु द्वारा पूर्णरूपेण सम्पन्न किया। बहरहाल, विश्वासियों के लिए भी पाप कर देने की सम्भावना बनी रहती है। विश्वासी लोग पाप क्यों (या कब) करते हैं? जब वे शारीरिकता (पुराने मनुष्यत्व या आदम स्वभाव) के अधीन जीवन आचरण करते हैं। चूंकि ऐसा जन शारीरिकता के चलाए चल (पाप कर) रहा है और पाप की मजदूरी अब भी मृत्यु ही है; अतएव ऐसा व्यक्ति अपने पाप-कर्म के द्वारा परमेश्वर के साथ अपनी संगति-सहभागिता में एक अलगाव पैदा कर देता है। ऐसा व्यक्ति परमेश्वर तथा उसकी आत्मा के साथ अपने सम्बन्ध में एक रुकावट ला देता है (यशा0 59:2)। ऐसा विश्वासी 'मसीह के मन' के साथ एकता में होने के बजाय उल्टी चाल चलने लगता है। ऐसे लोग हर चीज को ईश्वरीय दृष्टिकोण के बजाय स्वार्थी एवं संसारी दृष्टिकोण से देखने लगते हैं। इस प्रकार वे परमेश्वर-विरुद्ध चाल चलने लगते हैं अर्थात् ईश्वर-विरोधी जीवन जीने लगते हैं। अतः कलीसियाई (आत्मिक) अनुशासन का उद्देश्य शारीरिक विश्वासी को उसकी शारीरिकता (पुराना आदम स्वभाव) की पहचान कराना है; और इस प्रकार उसे रोमियों के छठवें अध्याय की सच्चाईयों को पुनः अपनाने की ओर प्रोत्साहित करना है, ताकि वह अपनी क्रूसित शारीरिकता सम्बन्धी सच्चाई को पहचानते हुए आत्मा के चलाये चलने की ओर वापस आकर परमेश्वर की सुसंगति में पुर्नस्थापित हो सके।

"क्या तुम नहीं जानते कि दुष्ट लोग परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी न होंगे? धोखा न खाओ : न व्यभिचारी, न मूर्तिपूजक, न परस्त्रीगामी, न कामातुर, न पुरुषगामी, न चोर, न

लोभी, न पियक्कड़, न गालियां बकने वाले, और न लुटेरे, परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी होंगे। और तुम में से कुछ ऐसे ही थे, परन्तु तुम अब प्रभु यीशु मसीह के नाम में और हमारे परमेश्वर के आत्मा के द्वारा धोए गए, पवित्र किए गए और धर्मी ठहराए गए। सब वस्तुएं मेरे लिए उचित तो हैं, परन्तु सब वस्तुएं हितकर नहीं। सब वस्तुएं मेरे लिए उचित तो हैं, परन्तु मैं किसी वस्तु के अधीन न होऊंगा, भोजन पेट के लिए और पेट भोजन के लिए है, परन्तु परमेश्वर इन दोनों का अन्त कर देगा। फिर भी देह व्यभिचार के लिए नहीं, परन्तु प्रभु के लिए है और प्रभु देह के लिए है" (प0कुरि0 5:9-13) यहां पौलुस जिन पापों का ज़िक्र करता है, उनकी आज भी संसार में भरमार है। पौलुस यहां यह दर्शाता है कि यदि किसी मसीह (विश्वासी) के जीवन में इनमें से कोई भी पाप प्रमुख स्थान बनाए हुए है तो ऐसा जन (स्थानीय) कलीसिया से बहिष्कृत किया जाना चाहिए, ताकि शैतान का इस्तेमाल करके परमेश्वर उस व्यक्ति के **शारीरिक** जीवन का "विनाश" कर सके। हो सकता है कि ऐसा करने से उसमें आत्मिक सुधार आए। स्मरण रहे कि पौलुस यह बात विश्वासियों के पापाचार के सम्बन्ध में ही लिखता है। अविश्वासी कुकर्मियों के लिए अपने पाप में ही चलते रहने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं है। उन्हें परम प्रधान परमेश्वर के न्याय-दंड के हवाले ही छोड़ देना है।

इन सब बातों के प्रसंग में हम विश्वासियों की प्रमुख भूमिका विश्वास के सहारे **आत्मा** के अधीन जीवन बिताना है। अर्थात् परमेश्वर की सम्पदा के रूप में उसी के सदुपयोग हेतु अपने आप

को उसके हाथों में सौंपते रहना। वह प्रत्येक विश्वासी से प्रेम रखता है और प्रत्येक को भली-भांति जानता-पहचानता है। इतना ही नहीं, प्रभु परमेश्वर प्रत्येक विश्वासी की वास्तविक आवश्यकता को भी भली-भांति जानता है। जब हम अपने आप को प्रभु को सौंपते हुए (पवित्र) आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करते हैं, तब **वह** हमारे सम्पर्क में आने वालों के जीवन की आवश्यकतानुसार हमें इस्तेमाल करेगा अर्थात् अपना काम करेगा। दूसरे विश्वासियों की गलती (बुराई) ढूंढना या उन्हें उनकी गलती (बुराई) के प्रति कायल करना, हमारा काम नहीं है। हमारा दायित्व **आत्मा** के चलाए जीवन व्यतीत करना है। इसके आगे **वह** अपनी इच्छानुसार हमें जिस किसी प्रकार इस्तेमाल करना चाहेगा, उसके लिए योग्यता प्रदान करेगा, और इस प्रकार हमारे जीवन में तथा हमारे जीवन द्वारा जो कुछ करना चाहेगा, उसे अवश्य करेगा।

छः

"जब तुम्हारे मध्य आपस में झगड़ा होता है तो क्या तुम में से ऐसा कोई है जो पवित्र लोगों के पास जाने के बदले अधर्मियों से न्याय करवाने का दुस्साहस करता है? क्या तुम नहीं जानते कि पवित्र लोग जगत का न्याय करेंगे? और यदि तुम्हारे द्वारा संसार का न्याय किया जाएगा तो क्या तुम इन छोटे छोटे झगड़ों का निर्णय करने के योग्य नहीं हो? क्या तुम नहीं जानते कि हम स्वर्गदूतों का न्याय करेंगे? तो क्या हम इन सांसारिक बातों का न्याय करने के योग्य नहीं? फिर जब तुम्हारे मध्य सांसारिक बातों के लिए न्यायालय हैं, क्या तुम ऐसे व्यक्तियों को न्यायी नियुक्त करते हो जिनका कलीसिया में कोई महत्व नहीं? मैं तुम्हें लज्जित करने के लिए यह कह रहा हूं। क्या यह सच है कि तुम्हारे मध्य एक भी बुद्धिमान नहीं जो अपने भाईयों के आपसी झगड़े सुलझा सके? क्या भाई अपने भाई पर मुकदमा चलाता है और वह भी अविश्वासियों के सम्मुख? तब तो वास्तव में तुम्हारी पहली हार यही है कि तुम्हारे आपस में मुकदमें चलते हैं। इसकी अपेक्षा तुम अन्याय क्यों नहीं सह लेते? तुम ही छल क्यों नहीं सह लेते? इसके विपरीत तुम स्वयं ही अन्याय और छल करते हो, और वह भी अपने भाइयों के साथ!" (प0कुरि0 6:1-8)। यहां पौलुस ने विश्वासियों द्वारा विश्वासियों को अदालत में ले जाने की समस्या के बारे में लिखा है। इस मंडली में इतनी अधिक समस्याएं इसलिए थीं क्योंकि वे शारीरिकता के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहे थे और

परमेश्वर का वचन रूपी गरिष्ठ (ठोस) भोजन ग्रहण नहीं कर रहे थे। इसीलिए पौलुस ने बारम्बार उनके पाप-कर्मों की ओर उनका ध्यानाकर्षण करके उनकी शारीरिकता को बेपर्द करना चाहा। छठवें अध्याय के पहले तीन पदों में पौलुस ने कुरिन्थुस के विश्वासियों को यह समझाना चाहा कि परमेश्वर के समक्ष धर्मी ठहराए जा चुके लोगों के लिए, **उसके** समक्ष धर्मी नहीं ठहराए गए लोगों के पास अपना मुकदमा ले जाना तर्कहीन (अशोभनीय) है। भविष्य में एक दिन ऐसा आएगा जबकि सारे विश्वासी मसीह के साथ वापस आकर संसार एवं स्वर्गदूतों का न्याय करेंगे। इसलिए जब तक हम इस दुनियां में हैं तो यहां के अपने छोटे-छोटे झगड़ों को (न्यायपूर्ण ढंग से) सुलझाने में और अधिक समर्थ होना चाहिए। इस प्रकार पौलुस ने विश्वासियों के मूर्खतापूर्ण कार्य-व्यवहार को दर्शाते हुए उनकी शारीरिकता का भंडाफोड़ किया। चौथे से छठवें पदों में भी उनकी मूर्खतापूर्ण हरकतों का जिक्र करते हुए पौलुस ने उनके अशोभनीय आचरण का पर्दाफाश किया। पांचवे पद में उसके प्रश्न पर ध्यान दें : *"क्या तुम्हारे मध्य एक भी बुद्धिमान नहीं जो अपने भाइयों के आपसी झगड़े सुलझा सके? क्या भाई अपने भाई पर मुकदमा चलाता है और वह भी अविश्वासियों के सम्मुख"?* जरा सातवें पद को देखें : *"तब तो वास्तव में तुम्हारी पहली हार यही है कि तुम्हारे आपस में मुकदमें चलते हैं। इसकी अपेक्षा तुम अन्याय क्यों नहीं सह लेते? तुम ही छल क्यों नहीं सह लेते"?*

परमेश्वर के इन पवित्र लोगों की परस्पर मुकदमेबाजी ही उनकी एक (आत्मिक) पराजय थी। यह तो उनके शारीरिकतापूर्ण जीवन-व्यवहार का स्पष्ट प्रमाण था। सच तो यह है कि "शरीर के

अनुसार " जीवन बिताना ही उनके लिए बहुत बड़ी आत्मिक हानि (हार) की बात थी। मुकदमेबाजी जैसे अन्य कार्य तो शारीरिक जीवन-शैली के फल मात्र थे। अब पौलुस के इन प्रश्नों पर ध्यान दें : "तुम अन्याय क्यों नहीं सह लेते? तुम ही छल क्यों नहीं सह लेते"? **शरीर** में हम केवल स्वकेंद्रित होते हैं और अपना बदला व अधिकार लेना चाहते हैं, जो कि हमारे शारीरिक जीवन की भ्रष्टता का एक और स्पष्ट प्रमाण है। शारीरिक जन अन्याय और छल-कपट नहीं सहना चाहता, वह तो बदला लेना चाहता है। उसके विपरीत पवित्र आत्मा के चलाए जीवन बिताने वाले विश्वासी एक दूसरे पर मुकदमा नहीं करेंगे। ऐसे विश्वासी अपने "आपे" (अहंकार व स्वार्थ) के प्रति मृतक होने के कारण अन्याय सहने को तैयार रहते हैं" (दू0कुरि0 12:5)।

"क्या तुम नहीं जानते कि दुष्ट लोग परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी न होंगे? धोखा न खाओः न व्यभिचारी, न मूर्तिपूजक, न चोर, न लोभी, न पियक्कड़, न गालियां बकने वाले और न लुटेरे, परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी होंगे। और तुम में से कुछ ऐसे ही थे, परन्तु तुम अब प्रभु यीशु मसीह के नाम में और हमारे परमेश्वर के आत्मा के द्वारा धोए गए, पवित्र किए गए और धर्मी ठहराए गए" (प0कुरि0 6:9-11)। छठवें अध्याय के प्रथम आठ पदों में इहलौकिक समस्याओं के बारे में उल्लेख करने के पश्चात् नौवें से ग्यारहवें पदों में पौलुस पुनः आत्मिक स्तर पर आ जाता है; अर्थात् पार्थिव परिस्थितियों से ऊपर उठ कर विश्वासियों की स्वर्गिक आशीषित अवस्था के बारे में समझाता है। जिन अविश्वासियों के पास कुरिन्थुस की मंडली के लोग अपनी समस्याओं के समाधान के

लिए जा रहे थे, वे उद्धार पाए हुए लोग नहीं थे, और अनन्त जीवन से वंचित थे। पौलुस ने वहां की मंडली के लोगों को याद दिलाया कि एक दिन वे लोग भी परमेश्वर की दृष्टि में उन्हीं अविश्वासियों के समान थे। परन्तु अब वे परमेश्वर की दृष्टि में शुद्ध किए (धोए) गए और धर्मी ठहराए गए लोग हैं। **धोए गए :** मसीह के लहू के द्वारा उनके सारे पाप क्षमा कर दिए गए हैं। **पवित्र किए गए :** ईश्वरीय इस्तेमाल एवं उसकी सम्पदा होने हेतु अलग किए गए। **धर्मी ठहराए गए :** धर्मी यानी निर्दोष घोषित किए गए हैं और इस प्रकार प्रभु परमेश्वर के समक्ष पूर्णतः ग्रहणयोग्य। परमेश्वर के अनुग्रह से वे लोग शुद्ध, पवित्र और धर्मी ठहराए जा चुके थे। अब उनके लिए यह जरूरी नहीं था कि उद्धार-विहीन अविश्वासियों की तरह शारीरिकता के अनुसार जीवन व्यतीत करें। अब अपनी नयी आध्यात्मिक अधिकार-अवस्था के कारण वे इहलौकिक परिस्थितियों से ऊपर उठ कर जीवन जी सकते थे।

"सब वस्तुएं मेरे लिए उचित तो हैं, परन्तु सब वस्तुएं हितकर नहीं। सब वस्तुएं मेरे लिए उचित तो हैं, परन्तु मैं किसी वस्तु के अधीन न होऊंगा। भोजन पेट के लिए और पेट भोजन के लिए है, परन्तु परमेश्वर इन दोनों का अन्त कर देगा। फिर भी देह व्यभिचार के लिए नहीं, परन्तु प्रभु के लिए है, और प्रभु देह के लिए है। परमेश्वर ने न केवल प्रभु को ही जिला उठाया, वरन् वह हमें भी वैसी ही अपनी सामर्थ्य से जिला उठाएगा। क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारे शरीर मसीह के अंग हैं? तो क्या मैं मसीह के अंगों को लेकर वेश्या के अंग बना दूं? कदापि नहीं! क्या तुम यह नहीं जानते कि वह जो वेश्या से संभोग करता है उसके साथ एक तन

हो जाता है? क्योंकि कहा गया है, 'वे दोनों एक तन होंगे'। परन्तु वह जो प्रभु से संगति करता है उसके साथ एक आत्मा हो जाता है। व्यभिचार से भागो। अन्य सारे पाप जो मनुष्य करता है देह के बाहर होते हैं, परन्तु व्यभिचारी तो अपनी देह के विरुद्ध पाप करता है। क्या तुम नहीं जानते कि तुम में से प्रत्येक की देह पवित्र आत्मा का मंदिर है, जो तुम में है और जिसे तुमने परमेश्वर से पाया है, और कि तुम अपने नहीं हो? क्योंकि तुम मूल्य देकर खरीदे गए हो : इसलिए अपने शरीर के द्वारा परमेश्वर की महिमा करो" (प0कुरि0 6:12-20)। कुरिन्थुस की मंडली के लोगों को पौलुस ने यह शिक्षा दी थी कि मसीही (विश्वासी) होने के कारण वे 'यहूदी व्यवस्था' की अधीनता से मुक्त हैं और अपनी पसन्द का भोजन खा सकते हैं। परन्तु इस सच्चाई के सिखाए जाने के बावजूद उन विश्वासियों ने 'व्यवस्था की अधीनता से मुक्त' होने की बात का गलत अर्थ लगाया। उन्होंने 'व्यवस्था से मुक्त' होने को पाप करने की आजादी समझा (गला0 5:13)। उन्होंने यह सोचा कि जैसे बिना किसी प्रतिबन्ध के "भोजन पेट के लिए और पेट भोजन के लिए है", उसी प्रकार देह भी बिना किसी प्रतिबन्ध (बेरोकटोक) के सेक्स-सम्बन्ध (कामुकता) के लिए है। बारहवें पद में पौलुस बड़ी स्पष्टता से कहता है कि 'सब वस्तुएं उचित हैं'। तात्पर्य यह है कि विश्वासी जन गलती से चाहे जैसा भयावह काम कर दे, "व्यवस्था" उसे दोषी नहीं ठहरा सकती; क्योंकि इन सब का (पापों का) दंड-मूल्य प्रभु मसीह अपने बलिदान द्वारा पूर्णरूपेण चुकता कर चुका है। बहरहाल, बारहवें पद में ही पौलुस के शेष शब्दों पर ध्यान दें : परन्तु "सब वस्तुएं हितकर नहीं"। यद्यपि हमारे गलत कार्यों के लिए

"व्यवस्था" हमें दोषी नहीं ठहरा सकती, तब भी इसका मतलब यह नहीं कि ऐसा करना (अर्थात् गलत काम करना) उचित है। यद्यपि **व्यवस्था** द्वारा हम दोषी नहीं ठहराए जाते, तथापि पाप की सत्ता का गुलाम बने रहना, छुटकारा नहीं पाए हुए लोगों जैसा शारीरिकतापूर्ण जीवन बिताना है (रोमियों 6:6,14)। मसीह की मृत्यु के द्वारा हम **व्यवस्था** (की रीति-विधियों) के बन्धन से इसलिए नहीं छुड़ाए गए कि **पाप के दास** बने रहें, बल्कि व्यवस्था एवं पाप की सत्ता-शक्ति (अधीनता) से उसने इसलिए आजाद किया ताकि हम पवित्र एवं धर्मी जीवन जी सकें।

इस पत्री के छठवें अध्याय के तेरहवें-चौदहवें पदों के अनुसार परमेश्वर ने हमारे पेट को भोजन के लिए और पेट हेतु भोजन प्रदान किया है ताकि इस जमीन पर हमारी देह का पोषण होता रहे। जब हम स्वर्ग में जायेंगे तब हमें एक नई देह मिलेगी जिसे इस भोजन की जरूरत नहीं होगी (अर्थात्, पुरानी देह का अन्त होगा)। इस प्रकार, यद्यपि हमारा पेट भोजन के लिए और भोजन इस पेट के लिए बना है, तथापि हमारी देह इसलिए नहीं बनी है कि हम जिससे चाहें उसके साथ काम-वासना (सेक्स-सम्बन्ध) में लग जाएं। अन्ततः हमारी यह देह प्रभु परमेश्वर के लिए बनी है कि **वह** जैसा उचित समझता है, अपनी इच्छानुसार इसका इस्तेमाल करे। जैसे पिता परमेश्वर ने मसीह यीशु को मृतकों में से पुनः जीवित करके नया जीवन दिया, उसी प्रकार हमें भी **वही जीवन** प्रदान करके इस धरती पर **आत्मा** के चलाए चलते हुए उस जीवन के अनुभव का अवसर दिया है।

पन्द्रहवें से सत्रहवें पदों में पौलुस यह सिखाता है कि उद्धार पाते ही हम **मसीह** (की देह) के **अंग** हो गए। अर्थात् 'मसीह में' स्थापित या रोपित कर दिए गए (प0कुरि0 1:30), और उसकी मृत्यु, दफन एवं उसके पुनरुत्थान में स्थापित किए गए। इतना ही नहीं, बल्कि हमें उसका जीवन प्रदान किया गया (रोमियों 6:1-4)। इसीलिए पौलुस बिल्कुल स्पष्ट कर देता है कि व्यभिचार करने वाला (विश्वासी जन) मसीह को 'वेश्यागमन' में सहभागी बनाता है। इसके विपरीत सत्रहवां पद यह दर्शाता है कि **आत्मा** के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले (विश्वासी) "प्रभु के साथ **एक आत्मा**" हो जाते हैं। सैद्धान्तिक, स्वर्गिक, स्थिति-सूचक अर्थात्, परमेश्वर की दृष्टि में हम अपने उद्धार-प्राप्ति के क्षण ही मसीह के साथ एक हो गए; किन्तु जैसे-जैसे **आत्मा** के अनुसार जीवन बिताएंगे वैसे-वैसे वर्तमान परिस्थितियों में (व्यवहारिक जीवन में) भी प्रभु के साथ एक होने के अनुभव में बढ़ते जाएंगे। यहां अट्ठारहवें पद की बात रोमियों 6:11-13 में पौलुस द्वारा दिए गए संदेश के समान है : *"इस प्रकार तुम भी अपने आप को पाप के लिए मृतक, परन्तु मसीह यीशु में परमेश्वर के लिए जीवित समझो। इसलिए पाप को अपने मरणहार शरीर में प्रभुता न करने दो, कि तुम उसकी लालसाओं को पूरा करो, और न अपने शरीर के अंगो को अधर्म के हथियार बनाकर पाप को सौंपो, परन्तु अपने आप को मृतकों में से जीवित जानकर अपने अंगो को धार्मिकता के हथियार होने के लिए परमेश्वर को सौंप दो"*। हमारी देह मसीह के लहू द्वारा खरीदी जा चुकी है और पवित्र आत्मा का मंदिर है। अतएव अब हमारी देह संसार, शैतान और शारीरिकता के अधीन नहीं है कि इनके पापपूर्ण इरादों के लिए

इस्तेमाल हो। बल्कि अब तो हमारी देह प्रभु परमेश्वर की है और उसके उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल होनी है। इसके द्वारा प्रभु परमेश्वर को ही महिमान्वित होना है। जैसे-जैसे पवित्र आत्मा हमारे जीवन में और हमारे जीवन के द्वारा मसीह का जीवन प्रकाशित करता है, वैसे-वैसे हमारी देह से भी प्रभु की महिमा होगी। यह पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने के द्वारा ही सम्भव है।

[नोट – पहला कुरिन्थियों के प्रमुख हिस्सों के इस अध्ययन का उद्देश्य विश्वासियों को शारीरिकता के बजाय आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करने के लिए प्रोत्साहित करना है। ऐसे सीमित अध्ययन में इस पत्री के सभी पदों का विस्तृत अध्ययन सम्भव नहीं है। अतः 'विवाह तथा मूर्तियों पर चढ़ाए गये चढ़ावों' इत्यादि समस्याओं से सम्बन्धित सातवें, आठवें, नौवें एवं दसवें अध्यायों को छोड़ते हुए, अब हम ग्यारहवें अध्याय तथा उससे आगे की प्रमुख बातों पर विचार करेंगे।**]**

सात

"अतः जब तुम एकत्रित होते हो तो यह प्रभु भोज खाने के लिए नहीं, क्योंकि खाते समय प्रत्येक दूसरे से पहले अपना भोजन झपटकर खा लेता है, जिससे कोई तो भूखा रह जाता है, और कोई मतवाला हो जाता है। क्या तुम्हारे पास घर नहीं, जहां तुम खाओ और पीओ? अथवा क्या तुम परमेश्वर की कलीसिया का अनादर करते हो और जिनके पास कुछ नहीं है, उनको लज्जित करते हो? मैं तुमसे क्या कहूँ? क्या मैं तुम्हारी प्रशंसा करूं? इस बात में मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं करूंगा" (प0कुरि0 11:20-22)। यहाँ पौलुस की प्रमुख बात को ध्यान में रखना बहुत जरूरी है। वह उन्हें यह बता रहा था कि वे शारीरिकता-केन्द्रित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनके जीवन में पाप का बोलबाला है। इस ग्यारहवें अध्याय में उनकी शारीरिकतापूर्ण जीवन-शैली की एक अन्य बुराई का ज़िक्र है।

प्रभु-भोज की आराधना-सभा का उद्देश्य प्रभु यीशु की मृत्यु को स्मरण करना था। लेकिन कुरिन्थुस की मंडली के लोग ऐसे समय अपनी शारीरिक अभिलाषाओं की पूर्ति में लग जाते थे। कुछ लोग भूखे रहते थे, जबकि कई अन्य लोग अत्यधिक दाखरस पीकर मतवाले हो जाते थे। इसीलिए पौलुस कहता है कि यद्यपि प्रभु-भोज लेने के द्वारा वे मसीह को स्मरण करने के लिए एकत्रित होते हैं, लेकिन उनका मकसद अनुचित था। जिस सभा का उद्देश्य मसीह

यीशु के अद्वितीय बलिदान को स्मरण करना और उसकी उपासना करना था, उसे स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनाया जा रहा था। यह भी कुरिन्थुस की मंडली के लोगों के शारीरिकतापूर्ण व्यवहार का एक उदाहरण था। **शरीर** के चलाए चलने पर हम सिर्फ अपने स्वार्थ-सिद्धि के ही चक्कर में रहते हैं। इसीलिए कुरिन्थुस के विश्वासी दूसरे विश्वासियों के प्रति उदासीन होने के अलावा प्रभु यीशु की सच्ची स्मृति में प्रभु-भोज लेने में भी असमर्थ थे। तात्पर्य यह है कि जो चीज मसीह, उसकी मृत्यु और उससे विश्वासीजन को प्राप्त तमाम आशिषों पर गम्भीरतापूर्वक मनन-चिन्तन करने के उद्देश्य से स्थापित की गई थी, उसे वे इतना हल्का व अमहत्वपूर्ण बना दिए थे कि पेटूपन और पियक्कड़पन के द्वारा स्वार्थ-सिद्धि की जा रही थी। पौलुस जानता था कि यह सब शारीरिकतापूर्ण आचरण की अभिव्यक्ति है। उपर्युक्त बाइसवें पद से स्पष्ट है कि इससे पौलुस बहुत दुखित था (गला0 4:19)। यद्यपि वह जानता था कि 'शारीरिकता' प्रभु को महिमा देने में असमर्थ है, तथापि वह इस बात से दुखित था कि जो प्रभु उनके लिए क्रूस पर मरा, उसकी मृत्यु को उसके लोग अमहत्वपूर्ण व तुच्छ समझ रहे थे।

"जो बात मैंने तुम्हें सौंपी है वह मुझे प्रभु से मिली थी, कि प्रभु यीशु ने जिस रात वह पकड़वाया गया, रोटी ली, और उसने धन्यवाद देकर रोटी तोड़ी और कहा, 'यह मेरी देह है जो तुम्हारे लिए है : मेरे स्मरण के लिए यही किया करो'। इसी प्रकार भोजन के पश्चात् उसने यह कहते हुए कटोरा भी लिया, 'यह मेरे लहू में नई वाचा का कटोरा है। जब जब तुम इसमें से पीओ तब तब मेरे

स्मरण के लिए यही किया करो। क्योंकि जब जब तुम इस रोटी को खाते और इस कटोरे में से पीते हो तो जब तक प्रभु न आ जाए उसकी मृत्यु का प्रचार करते हो" (प0कुरि0 11:23-26)। पौलुस ने उन्हें प्रभु-भोज का महत्व समझाया। उसने प्रभु की ओर से उसे दर्शाए गए प्रभु-भोज के भावार्थ को बताया। प्रभु-भोज की रोटी, मसीह की उस देह का प्रतीक होती है जो हमारे लिए तोड़ी गई। रोटी खाते समय हमें यह स्मरण रखना है कि **उसके** (प्रभु के) साथ यह सब हमारे बदले हुआ। प्याले का रस (दाख-रस), हमारे पापों के दंड-मूल्य स्वरूप बहाए गए मसीह के लहू का प्रतीक होता है। छब्बीसवें पद के अनुसार, जब तक प्रभु पुनः वापिस नहीं आता तब तक उसकी कलीसिया को उसकी समृति में ऐसा करते रहना है। इस प्रकार कलीसिया जब हमारे बदले मसीह की मृत्यु को निरन्तर स्मरण करती रहेगी तब मसीह के साथ क्रूस पर हमारी (पुराने पाप-स्वभाव की) मृत्यु का भी हमें सतत स्मरण कराया जाएगा (रोमियों 6:6)।

तेईसवें पद के अनुसार, प्रभु-भोज सम्बन्धी यह ईश्वरीय शिक्षा कुरिन्थुस की मंडली को पौलुस पहले ही दे चुका था, किन्तु अब उसकी पुनः याद दिलानी पड़ी। इतनी महत्वपूर्ण सच्चाई की अब पुनः क्यों याद दिलानी पड़ी? उत्तर स्पष्ट है : उनकी शारीरिकता की जीवन-शैली। इसीलिए उन लोगों को वह बुनियादी बातें फिर से सिखानी पड़ीं जिनके बारे में उन्हें अब तक सुनिश्चित हो जाना चाहिए था। ध्यान रहे कि उनकी प्रमुख समस्या उनके पाप-कर्म नहीं, बल्कि उनकी शारीरिकता थी। इस प्रमुख समस्या की ओर

उनका ध्यानाकर्षण करने हेतु उसने उनके बुरे कामों को दर्शाया; जिससे वे इस सत्य को पुनः पहचानें कि उनकी शारीरिकता मसीह के साथ क्रूसित की जा चुकी है, और वे **आत्मा** द्वारा जीवन व्यतीत करने में समर्थ हों। ऐसा होने पर वह लोग प्रभु-भोज में सही मन से भाग लेते अर्थात – प्रभु की देह व लहू के महत्व को सही तरीके से स्मरण करते।

"इसलिए जो कोई अनुचित रीति से यह रोटी खाता और प्रभु के इस कटोरे में से पीता है, वह प्रभु की देह और लहू का दोषी ठहरेगा। अतः मनुष्य अपने आप को परखे तब इस रोटी को खाए और इस कटोरे में से पीए। क्योंकि जो खाता और पीता है, यदि उचित रीति से प्रभु की देह को पहिचाने बिना खाता पीता है तो अपने ऊपर दंड लाने के लिए ही ऐसा करता है। इस कारण तुम में से बहुत-से निर्बल और रोगी हैं और बहुत-से सो भी गए। यदि हम अपने आप को ठीक से जांचते तो दंड न पाते। परन्तु प्रभु दंड देकर हमारी ताड़ना करता है कि हम संसार के साथ दोषी न ठहराए जाएं" (प0कुरि0 11:27-32)। यहां सत्ताईसवें पद से स्पष्ट है कि प्रभु-भोज में "अनुचित रीति" से भाग लेने वाला "प्रभु की देह और लहू का दोषी" होता है। अगले पदों की बात से "अनुचित रीति" का भावार्थ और साफ हो जाता है। अट्ठाइसवें पद में विश्वासी को अपने आप को **परखने** की सलाह दी गई है। यहां **परखने** में 'उपयुक्त मायने समझने' का विचार पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, पौलुस के अनुसार प्रभु-भोज लेने से पूर्व हमें अपने आप को 'उपयुक्त (योग्य)' घोषित करना है। यहां प्रस्तुत

परिच्छेद के प्रसंग को नहीं भूलना है। कुरिन्थुस की मंडली के लोग प्रभु-भोज में गलत मकसद से शामिल होने लगे थे। पेटूपन व पियक्कड़पन में लग गए थे। प्रभु-भोज तो मसीह यीशु की मृत्यु के (अद्वितीय) महत्व को स्मरण करने के लिए है। मसीह की मृत्यु की इस यादगार के समय, हम उसके साथ अपनी (पुराने मनुष्यत्व की) मृत्यु तथा मसीह में प्राप्त अनगिनत आत्मिक आशिषों को याद करते हैं। उसकी मृत्यु तथा उसकी मृत्यु द्वारा उपलब्ध आध्यात्मिक आशिषों के स्मरण से हममें प्रभु-भोज के प्रति सही मनोभावना (सोच) पैदा होगी और हम उसमें भाग लेने के लिए 'उपयुक्त या योग्य' होंगे।

पौलुस यह भी कहता है कि गलत मकसद से प्रभु-भोज में शामिल होना, इसे "अनुचित रीति" से लेना है। "अनुचित रीति" से प्रभु-भोज लेने वाला व्यक्ति प्रभु की देह को "उचित रीति से नहीं पहिचानता"। यहां प्रयुक्त "पहचानने" शब्द में 'जानने, सुनिश्चित होने या निर्णय करने' का अर्थ पाया जाता है, और इसके अलावा इसमें 'दूर हटने' का भाव भी शामिल है। अतएव प्रभु-भोज में "अनुचित रीति" से भाग लेना प्रमुखतः "अविश्वास" में भाग लेना है। इस प्रकार 'प्रभु की देह को नहीं पहचानते' का मतलब अपने जीवन में इसके प्रभाव को नहीं जानना और इसके फलस्वरूप वर्तमान परिस्थिति में इससे अलगाव (दूर रह कर) का जीवन बिताना है। पौलुस यह भी कहता है कि प्रभु-भोज में "अनुचित रीति" से भाग लेने पर, हमारे जीवन में दुख-बीमारी और यहां तक कि मृत्यु भी लाकर, प्रभु हमारी शारीरिकता का पर्दाफाश करता है, और इस प्रकार ताड़ना के द्वारा हममें आत्मिक विकास करते हुए

सही मनोवृत्ति पैदा करता है। अतः पौलुस प्रभु-भोज के बारे में यह समझाता है कि इसमें भाग लेने वालों को अपने जीवन में मसीह की मृत्यु के (तथा उसके साथ हमारी मृत्यु के) प्रभाव को जानते-मानते (विश्वास करते) हुए भाग लेना चाहिए। चौंतीसवें पद में पौलुस की बात पुनः उन लोगों की प्रमुख समस्या की ओर इशारा करती है, अर्थात् प्रभु-भोज में गलत मकसद से भाग लेना : *"यदि कोई भूखा हो तो अपने घर में ही खा ले, ऐसा न हो कि तुम्हारा एकत्रित होना दंड का कारण बन जाए। मैं शेष बातों को स्वयं आकर ठीक करूंगा"* (प0कुरि0 11:34)।

आठ

"हे भाइयों, मैं नहीं चाहता कि आत्मिक वरदानों के विषय में तुम अनभिज्ञ रहो। तुम्हें मालूम है कि जब तुम अन्यजाति के थे तब गूंगी मूर्तियों की ओर जिस प्रकार भटकाए जाते थे उसी प्रकार चलते थे" (प0कुरि0 12:1-2)। उद्धार पाने से पूर्व कुरिन्थुस के विश्वासी मूर्तियों के पीछे चल रहे थे। क्या पत्थर व लकड़ी से बनी मूर्तियां लोगों को नियंत्रित कर सकती हैं? नहीं। क्योंकि उनमें जीवन की सामर्थ्य नहीं। बहरहाल, कुरिन्थुस के विश्वासी भी पहले मूर्तिपूजक थे। जैसे शैतान कुरिन्थुस के उन लोगों को उनके उद्धार से पूर्व अपनी गुलामी में फंसाए था, उसी प्रकार उद्धार-प्राप्ति से पूर्व हम भी शैतान के बंधन में थे। परन्तु परमेश्वर का वचन सुनाने के द्वारा पवित्र आत्मा ने हमें मसीह का सत्य सिखाया। *"इसलिए मैं तुम्हें बताए देता हूं कि परमेश्वर के आत्मा के द्वारा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं कहता कि यीशु शापित है। और न पवित्र आत्मा के बिना कोई यह कह सकता है कि यीशु प्रभु है"* (प0कुरि0 12:3)। पवित्र आत्मा की सेवकाई के कारण अब हम शैतान के धोखे में नहीं हैं। अब हम जानते हैं कि मसीह यीशु ही **प्रभु** है। परमेश्वर के वचन के माध्यम से पवित्र आत्मा द्वारा सिखाए बगैर कोई भी व्यक्ति इस ज्ञान एवं विश्वास में नहीं आ सकता कि (मसीह) यीशु ही प्रभु है (मत्ती 16:13-17)।

"वरदान तो विभिन्न प्रकार के हैं, पर आत्मा एक ही है। और सेवाएं भी कई प्रकार की हैं, परन्तु प्रभु एक ही है। प्रभावशाली

कार्य भी अनेक प्रकार के हैं, परन्तु परमेश्वर एक ही है जो सब में सब कुछ करता है" (प0कुरि0 12:4-6)। एक बार फिर इस तथ्य को याद करना महत्वपूर्ण है कि पहला कुरिन्थियों की पत्री से अब तक हमने जो अध्ययन किया, उसमें पौलुस वहां की मंडली के लोगों की शारीरिकता का पर्दाफाश करता है ताकि वे विश्वास के सहारे आचरण करने में उन्नति करें। इसीलिए उसने उनमें फैली बुराइयों (पापों) को दर्शाया है। अब वह उनकी शारीरिकता के एक अन्य कार्य-व्यवहार को दर्शाता है। वे यह जानते थे कि पवित्र आत्मा ने अनेक (विभिन्न) वरदान दिये हैं, लेकिन अपने शारीरिकता-केन्द्रित जीवन के कारण वे सत्य (की सही समझ) की अनदेखी करने लगे थे। कहने का मतलब यह है कि पवित्र आत्मा द्वारा दिए जाने वाले इन वरदानों को दूसरों की भलाई (आत्मिक उन्नति) का साधन मानने के बजाय इनसे स्वार्थ-सिद्धि कर रहे थे अर्थात् अपनी अधिकतम नाम कमाई या बड़ाई के लिए विशिष्ट वरदानों की चाहत में लगे थे। उनकी शारीरिकता को देखते हुए, पौलुस उनका ध्यान पुनः उन बुनियादी आत्मिक सच्चाईयों (शिक्षाओं) की ओर ले गया जिनका उन्हें ज्ञान होना चाहिए था। एक ही पवित्र आत्मा ने सब वरदानों को प्रदान किया है, इसलिए किसी विशेष वरदान को अन्य किसी वरदान से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं मानना है।

"परन्तु प्रत्येक को सब की भलाई के लिए आत्मिक वरदान दिया जाता है" (प0कुरि0 12:7)। यहां पर पौलुस यह स्पष्ट कर रहा है कि पवित्र आत्मा ने विश्वासियों को विभिन्न वरदान किस उद्देश्य से दिये हैं : "सब की भलाई के लिए"। चूंकि कुरिन्थुस की

मंडली के लोग शारीरिकता का जीवन व्यतीत कर रहे थे इसलिए "सब की भलाई के लिए" दिए गए वरदानों को अपनी बड़ाई में स्वार्थ-सिद्धि के लिए इस्तेमाल कर रहे थे। **शारीरिकता** यही करती है : सत्य के प्रति भ्रान्ति (सत्य की गलत समझ), गलत चीज (स्थान या विचार) पर ध्यान केन्द्रित करना, वरदानों एवं क्षमताओं का गलत इस्तेमाल करना। आठवें पद में पौलुस कई वरदानों का उल्लेख करता है जिन्हें **एक** ही पवित्र **आत्मा** ने सम्पूर्ण "देह" की भलाई के लिए दिया है।

"क्योंकि एक को आत्मा के द्वारा बुद्धि का वचन और दूसरे को उसी आत्मा के द्वारा ज्ञान का वचन दिया जाता है" (प0कुरि 12:8)। पवित्र आत्मा ने इन दोनों वरदानों (बुद्धि और ज्ञान) को पवित्र वचन लिपिबद्ध किए जाने से पूर्व, कलीसिया के प्रारम्भ में दिया। यूहन्ना के सुसमाचार के सोलहवें अध्याय में प्रभु यीशु ने अपने शिष्यों से यह वायदा किया था कि पवित्र आत्मा "सम्पूर्ण सत्य" में उनका **मार्गदर्शन** करेगा। उस समय परमेश्वर का वचन लिखित अर्थात् वर्तमान पवित्रशास्त्र बाइबॅल के रूप में उपलब्ध नहीं था, इसलिए पवित्र आत्मा ने कुछ खास लोगों को यह वरदान (बुद्धि एवं ज्ञान के वचन) प्रदान किया जिससे कि उनके द्वारा कलीसिया के शेष लोगों को सत्य (वचन) मिल सके। उनके द्वारा कलीसिया को दिया गया सत्य, अब लिपिबद्ध रूप में उपलब्ध है। आजकल सत्य को जानने के लिए हम कलीसिया में इन वरदानों को पाए हुए लोगों पर आशा-भरोसा रखने के बजाय पवित्र आत्मा पर आश्रित रहते हैं, जो परमेश्वर के लिखित वचन का उपयोग करते

हुए हमें शिक्षा प्रदान करता है। बेशक, प्रभु परमेश्वर पास्तर, प्रचारक एवं बाइबॅल शिक्षकों को परमेश्वर का वचन सिखाने के लिए मंडलियों में इस्तेमाल करता है, लेकिन केवल पवित्र आत्मा ही हमारे मन-मस्तिष्क को सत्य के प्रति जागृत करके ईश्वरीय ज्ञान-बुद्धि में अगुवाई करता है (इफि0 4:11-15)।

"किसी को उसी आत्मा से विश्वास का तथा किसी और को उसी एक आत्मा से चंगा करने का वरदान दिया जाता है" (प0कुरि0 12:9)। **विश्वास** और **चंगाई** करने के ये वरदान भी प्रारम्भिक कलीसिया को तथा यहूदियों के लिए प्रदान किए गए थे। पिन्तेकुस्त के समय से पूर्व, न तो यहूदी लोग (मसीह) यीशु को उद्धारकर्ता माने और न ही ग़ैरयहूदी लोग। इसके अतिरिक्त उस समय परमेश्वर का वचन भी वर्तमान लिखित रूप में उपलब्ध नहीं था। इसलिए प्रारम्भिक कलीसिया में पवित्र आत्मा ने कुछ खास लोगों को **विश्वास करने** के वरदान से विभूषित किया जिससे कि ऐसे लोग खड़े हों जो यीशु के ही **मसीह** होने की सच्चाई के बारे में पूर्णरूपेण सुनिश्चित (कायल) हों। इस सत्य के बारे में ऐसे विशिष्ट लोगों के अटल विश्वास का उपयोग करते हुए पवित्र आत्मा ने अन्य लोगों को प्रोत्साहित किया।

"किसी को उसी आत्मा से विश्वास का तथा किसी और को उसी एक आत्मा से चंगा करने का वरदान दिया जाता है, फिर किसी को कार्यों के सामर्थ्य की शक्ति और किसी को नबूवत करने, किसी को आत्माओं की परख, किसी को भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाएं बोलने, और किसी को भाषाओं का अर्थ बताने का वरदान

दिया जाता है" (प0कुरि 12:9–10)। परमेश्वर के वचन के पूर्ण रूप में लिपिबद्ध होने से पूर्व, प्रारम्भिक कलीसिया को ये वरदान देकर पवित्र आत्मा ने यह प्रमाणित किया कि प्रभु के प्रेरितों द्वारा दी गई सुसमाचार शिक्षा वास्तव में परमेश्वर–प्रदत्त अद्वितीय संदेश है। यह कुछ उसी तरह की घटनाएं हैं जैसे कि इस्राएलियों को मिस्र की गुलामी से छुड़ाने के लिए जब परमेश्वर ने मूसा को वहां भेजा : *"तब मूसा ने उत्तर दिया, 'यदि वे मेरा विश्वास न करें या मेरी बात न माने और कहें, यहोवा ने तुझे दर्शन नहीं दिया है, तो क्या होगा?' तब यहोवा ने उससे कहा, 'तेरे हाथ में वह क्या है?' और उसने कहा, 'लाठी'। तब उसने कहा, 'उसे भूमि पर डाल दे'। अतः उसने उसे भूमि पर डाल दिया और वह सर्प बन गई, और मूसा उसके सामने से भागा। परन्तु यहोवा ने मूसा से कहा, 'हाथ बढ़ाकर उसकी पूंछ पकड़ ले कि वे लोग प्रतीति करें कि उनके पूर्वजों के परमेश्वर, अर्थात् अब्राहम के परमेश्वर, और इसहाक के परमेश्वर और याकूब के परमेश्वर यहोवा ने तुझको दर्शन दिया है।' अतः उसने अपना हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ा और वह उसके हाथ में लाठी बन गई। फिर यहोवा ने उस से यह भी कहा, 'अपना हाथ अपने सीने पर रख कर ढांप'। अतः उसने अपना हाथ सीने पर रख कर ढांपा, फिर जब उसे बाहर निकाला तो क्या देखा कि उसका हाथ कोढ़ के कारण हिम–सा श्वेत हो गया। तब उसने कहा, 'अपना हाथ फिर से सीने पर रख कर ढांप'। अतः उसने अपना हाथ फिर सीने पर रखकर ढांप लिया और जब उसने सीने पर से उसे निकाला तो क्या देखा कि वह फिर से उसकी सारी देह के समान ज्यों का त्यों हो गया। 'और ऐसा होगा कि यदि वे तेरी*

बात पर विश्वास न करें या पहले चिन्ह को न मानें तो वे दूसरे चिन्ह के कारण विश्वास करेंगे। और ऐसा होगा कि यदि वे इन दोनों चिन्हों पर विश्वास न करें और तेरी बात न मानें, तो तू नील नदी में से कुछ जल लेकर सूखी भूमि पर डालना, और जो जल तू नील नदी में से लेगा वह सूखी भूमि पर लहू बन जाएगा'" (निर्ग0 4:1-9)। कुछ इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर ने प्रारम्भिक कलीसिया को **विश्वास करने, चंगा करने, सामर्थ्य के काम करने, नबूवत करने, आत्माओं को परखने, भिन्न-भिन्न प्रकार की भाशाएं बोलने** का वरदान और **भाशाओं का अर्थ बताने** के वरदान दिए। पहला कुरिन्थियों के पहले अध्याय के बाईसवें पद में यह लिखा है : "यहूदी तो चिन्ह (प्रमाण या चमत्कार) मांगते हैं"। अतएव प्रभु परमेश्वर ने मूसा को "चिन्ह" प्रदान किया ताकि वह यह प्रमाणित कर सके कि परमेश्वर ने उसे अपनी प्रजा को छुटकारा देने के लिए आधिकारिक तौर पर चुनकर भेजा है। इसी प्रकार प्रभु ने प्रारम्भिक कलीसिया को 'चिन्ह-प्रमाण वाले वरदान' प्रदान किए जिससे यह सुप्रमाणित व सुनिश्चित रहे कि उसके प्रेरितों को दिया गया सुसंदेश वास्तव में परमेश्वर का संदेश था, न कि मनुष्यों का मजहबी छल-कपट।

रोचक है कि परमेश्वर-प्रदत्त सामर्थ्य द्वारा प्रेरितों ने कैसे कैसे कार्य किए। ज़रा **प्रेरितों के काम** की पुस्तक के इन पदों पर ध्यान दें : *"अब हे प्रभु, उनकी धमकियों को देख, और अपने दासों को यह वरदान दे कि तेरे वचन को पूर्ण निर्भयता से सुनाएं। तू चंगा करने के लिए अपना हाथ बढ़ा और आश्चर्यकर्म और चिन्ह तेरे पवित्र सेवक यीशु के नाम के द्वारा किए जाएं। जब वे प्रार्थना कर*

चुके तो वह स्थान जहां वे एकत्रित थे हिल गया, और वे सब पवित्र आत्मा से परिपूर्ण हो गए, और परमेश्वर का वचन निर्भीकता से सुनाने लगे। और पौलुस के हाथों से परमेश्वर अद्‌भुत सामर्थ्य के काम दिखाता था, यहां तक कि उसकी देह से स्पर्श किए हुए रूमाल और अंगोछे रोगियों पर डाल दिए जाते थे और उनकी बीमारियां दूर हो जाती थीं, और दुष्टात्माएं उनमें से निकल जाया करती थीं" (प्रेरित0 4:29-31; 19:11-12)।

जब हमने परमेश्वर का संदेश सुना, तो क्या सुनाने वालों ने बड़े बड़े चिन्ह, चमत्कार, चंगाई या आश्चर्यकर्म करके अपने संदेश की सत्यता को प्रमाणित किया? नहीं। हमारा ध्यान परमेश्वर के वचन की ओर ले जाया गया और पवित्र आत्मा द्वारा ईश्वरीय संदेश की सत्यता हमारी अन्तरात्मा में प्रकाशित की गई। आजकल इसी प्रकार परमेश्वर अपने सत्य को लोगों पर प्रकट या प्रकाशित करता है; लेकिन परमेश्वर के वचन के वर्तमान लिपिबद्ध (अर्थात् पवित्रशास्त्र बॉइबल के) रूप में उपलब्ध होने से पूर्व पवित्र आत्मा ने आश्चर्यकर्मों द्वारा इस संदेश की सत्यता को प्रमाणित किया।

पहला कुरिन्थियों के बारहवें अध्याय के उपयुक्त दसवें पद में नबूवत या भविष्यवाणी के वरदान का ज़िक्र है। परमेश्वर के वचन के वर्तमान लिखित (अर्थात् पवित्र बाइबॅल के) रूप में उपलब्ध होने से पूर्व (नबूवत का) यह वरदान प्रारम्भिक कलीसिया को इसलिए दिया गया था ताकि मंडली परमेश्वर के वचन का ज्ञान पा सके। परन्तु वर्तमान काल में परमेश्वर-प्रदत्त सम्पूर्ण सत्य-संदेश परमेश्वर के वचन (बाइबॅल) में उपलब्ध हैं। अतएव यह वरदान प्रारम्भिक मंडली में जिस रूप में जाना जाता था, वैसा अब नहीं।

इसके बाद, उसी दसवें पद में **आत्माओं के परखने** के वरदान की बात लिखी है। यह वरदान भी प्रारम्भिक मंडली को प्रदान किया गया था। आजकल की तरह उन दिनों पवित्रशास्त्र उपलब्ध नहीं था, अतएव किसी शिक्षक या प्रचारक की शिक्षा की सत्यता का मूल्यांकन पवित्रशास्त्रीय पैमाने पर संभव नहीं था। इसीलिए उन दिनों पवित्र आत्मा ने कुछ खास विश्वासियों को इस प्रकार के परख की योग्यता (वरदान) प्रदान किया था। वर्तमान समय में यदि कोई नया व्यक्ति हमारी मंडली में शिक्षा देने आता है तो उसकी शिक्षा की सत्यता का मूल्यांकन (परख) करने हेतु हम ऐसे विशिष्ट वरदान प्राप्त लोगों की ताक में नहीं रहते, बल्कि उस व्यक्ति की शिक्षा का मूल्यांकन (परख) पवित्रशास्त्र के आधार पर करते हैं।

इसके पश्चात पौलुस ने **भिन्न-भिन्न प्रकार की भाशाएं बोलने** के वरदान का भी उल्लेख किया है। **प्रेरितों के काम** की पुस्तक के दूसरे अध्याय के प्रथम बारह पदों में पिन्तेकुस्त के दिन प्रभु के चेलों को यह वरदान दिए जाने का वर्णन पाया जाता है। उस दिन पवित्र आत्मा ने उन्हें तत्कालीन संसार की ऐसी भाषाओं में सुसमाचार प्रचार करने की योग्यता प्रदान की, जिन्हें वे कभी सीखे ही नहीं थे। यह वरदान भी प्रारम्भिक कलीसिया के लिए था (इसके बारे में पहला कुरिन्थियों के चौदहवें अध्याय के अध्ययन में कुछ और विचार व्यक्त किए गए हैं)। इसके अतिरिक्त, पौलुस ने अन्ततः **भाशाओं के अर्थ** बताने के वरदान का भी ज़िक्र किया है। प्रारम्भिक कलीसिया में पवित्र आत्मा की अगुवाई में जब कोई विश्वासी किसी

आगन्तुक के समझने (आत्मिक फायदे) के लिए ऐसी किसी भाषा में बोलता था जिसे वहां उपस्थित शेष लोग नहीं समझते थे, तो पवित्र आत्मा अन्य किसी को उस संदेश का अनुवाद करने की योग्यता प्रदान करता था, जिससे कि मंडली के शेष लोग भी लाभान्वित हों। यह वरदान भी वर्तमान में प्रभावी नहीं है, जैसे कि अन्य भाषा का वरदान। विभिन्न वरदानों का पौलुस ने इसलिए ज़िक्र किया क्योंकि वह कुरिन्थुस के विश्वासियों को यह समझाना चाहता था कि पवित्र आत्मा द्वारा दिए गए सभी वरदान महत्वपूर्ण हैं। चूंकि ये सभी वरदान पवित्र आत्मा की ओर से हैं, इसलिए (कुरिन्थुस के) विश्वासियों द्वारा 'अन्य भाषाओं में बोलने' की अपनी योग्यता पर घमण्ड करना उनकी मूर्खता एवं शारीरिकता का प्रमाण था।

"परन्तु वही एक आत्मा ये सब कार्य करवाता है और अपनी इच्छानुसार जिसे जो चाहता है अलग-अलग बांट देता है" (प0कुरि0 12:11)। शारीरिकता के चलाए चलने के कारण कुरिन्थुस के विश्वासी उन्हीं वरदानों के लिए प्रयत्नशील थे जो उन्हें आदर-मान व बड़ाई दे रहे थे। परन्तु इस पद में पौलुस की इस बात पर ध्यान दें : 'प्रत्येक वरदान पवित्र आत्मा अपनी इच्छानुसार जिसे जो चाहता है, प्रदान करता है'। इसका अर्थ यह है कि ऐसा कोई एक वरदान नहीं है जिसे पाने के लिए प्रत्येक विश्वासी को प्रयासरत रहना है, क्योंकि स्पष्ट लिखा है कि पवित्र आत्मा "अपनी इच्छानुसार जिसे जो चाहता है अलग-अलग बांट देता है"। हां, **वह** "अपनी इच्छानुसार" बांटता है, हमारी इच्छानुसार नहीं।

"क्योंकि जिस प्रकार देह तो एक है और उसके कई अंग

हैं, और देह के सब अंग यद्यपि अनेक हैं तौभी वे एक ही देह हैं, इसी प्रकार मसीह भी है" (प0कुरि0 12:12-13)। हमारी भौतिक देह में अनेक अंग हैं, किन्तु तब भी वह एक ही देह हैं। इसी प्रकार कलीसिया में बहुत से लोग (सदस्य) होते हैं, किन्तु मसीह में **जुड़कर** (सब मिलकर) एक देह हो जाते हैं। *"एक ही देह है और आत्मा भी एक है : ठीक उसी प्रकार अपनी बुलाहट की एक आशा में तुम भी बुलाए गए थे। एक ही प्रभु, एक ही विश्वास, एक ही बपतिस्मा और सब का एक ही परमेश्वर पिता है, जो सब के ऊपर और सब के मध्य और सब में है"* (इफि0 4:4-6)। एक देह होने के लिए सब विश्वासी मसीह में कैसे जुड़े (एक हुए)? जब हम मसीह को अपना उद्धारकर्ता मानकर उस पर विश्वास-भरोसा किए, तब पवित्र आत्मा द्वारा हम सब का मसीह में बपतिस्मा हुआ। *"उसी में तुम पर भी, जब तुमने सत्य का वचन सुना जो तुम्हारे उद्धार का सुसमाचार है – और जिस पर तुमने विश्वास किया – प्रतिज्ञा किए हुए पवित्र आत्मा की छाप लगी। क्या तुम नहीं जानते कि हम सब जो बपतिस्मा के द्वारा मसीह यीशु के साथ एक हुए, बपतिस्मा द्वारा उसकी मृत्यु में भी सहभागी हुए? इसलिए हम बपतिस्मा द्वारा उसकी मृत्यु में सहभागी होकर उसके साथ गाड़े गये हैं, जिससे कि पिता की महिमा के द्वारा जैसे मसीह जिलाया गया था, वैसे हम भी जीवन की नई चाल चलें"* (इफि0 1:13; रोमियों 6:3-4)।

"क्योंकि देह तो एक अंग का नहीं पर अनेक अंगों का समूह है। यदि पैर कहे, 'मैं हाथ नहीं, इसलिए मैं देह का अंग नहीं,' तो क्या वह इस कारण देह का अंग नहीं? यदि कान कहे,

'मैं आंख नहीं इसलिए मैं देह का अंग नहीं,' तो क्या इस कारण वह देह का नहीं? यदि पूरी देह आंख ही होती, तब सुनना कहां होता? और यदि सारी देह से सुनना ही होता तो सूंघना कहां होता? परन्तु परमेश्वर ने सब अंगों को अपनी इच्छा के अनुसार एक एक करके देह में रखा है। और यदि वे सब के सब एक ही अंग होते तो देह कहां होती? अंग तो अनेक हैं, परन्तु देह एक है। आंख, हाथ से नहीं कह सकती कि मुझे तेरी आवश्यकता नहीं। न सिर, पांव से कि मुझे तेरी आवश्यकता नहीं, इसके विपरीत, देह के वे अंग जो निर्बल प्रतीत होते हैं और भी अधिक आवश्यक हैं, और देह के जिन अंगों को हम कम आदर के योग्य समझते हैं उन्हीं को अधिक आदर देते हैं, और हमारे शोभाहीन अंग अत्यधिक शोभनीय हो जाते हैं, जबकि हमारे शोभनीय अंगों को इसकी आवश्यकता नहीं होती। परन्तु परमेश्वर ने हमारी देह को ऐसा बनाया है कि दीन-हीन अंगों को अधिक आदर मिले, कि देह में कोई फूट न पड़े, परन्तु सब अंग अपने समान एक दूसरे की चिन्ता करें। और यदि एक अंग दुख पाता है तो उसके साथ सब अंग दुख पाते हैं, और यदि एक अंग सम्मानित होता है, तो सब अंग उसके साथ आनन्दित होते हैं" (प0कुरि0 12:14-26)।

शारीरिकता के अधीन जीवन व्यतीत करने के कारण कुरिन्थुस के विश्वासी कुछेक वरदानों को शेष सभी वरदानों से ज्यादा महत्वपूर्ण मानने लगे थे। वे यह नहीं समझ रहे थे कि पवित्र आत्मा अपनी इच्छानुसार इन वरदानों को बांटता है, और पवित्र आत्मा की देन होने कारण सभी वरदान आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है,

छोटे बड़े नहीं। यदि हमारी भौतिक देह के प्रत्येक अंग एक ही प्रकार के अंग होते तो हमारे पास ऐसी देह नहीं होती और न ही हमारी देह वह सब कर सकती जैसा कि वर्तमान देह करती है। इसी प्रकार, यदि सभी विश्वासियों के पास एक ही प्रकार के वरदान होते, तब हम एक सामान्य आत्मिक देह (मंडली) की तरह क्रियाशील नहीं होते और उन विभिन्न कार्यों को नहीं कर पाते जिन्हें एक सामान्य (सक्रिय) आत्मिक देह (मंडली) कर सकती है। अपनी शारीरिकता के चलाए चलने के कारण कुरिन्थुस के लोग सिर्फ अपने स्वार्थ और अपनी नाम-कमाई (बड़ाई) की ओर ही ध्यान लगा रहे थे और सम्पूर्ण मंडली के लिए हितकर एवं सर्वोत्तम बातों की अनदेखी कर रहे थे।

"इसी प्रकार तुम मसीह की देह हो और एक एक करके उसके अंग हो, और परमेश्वर ने कलीसिया में प्रथम प्रेरित, द्वितीय नबी, तृतीय शिक्षक, फिर सामर्थ्य के कार्य करने वाले, चंगा करने के वरदान वाले, परोपकारी, प्रबन्धक तथा अन्य-अन्य भाषाएं बोलने वालों को नियुक्त किया है" (प0कुरि0 12:27-28)। जैसे मानव देह की संरचना के समय परमेश्वर ने प्रत्येक अंग को भिन्न कार्य सौंपा, उसी प्रकार "अपनी देह" (कलीसिया) के प्रत्येक अंग या सदस्य को चुनिन्दा कार्य (भूमिका) सौंपा है। अपनी शारीरिकता की वजह से कुरिन्थुस के विश्वासी परमेश्वर की इच्छा-योजना के बजाय अपने स्वार्थ-सिद्धि में लगे थे। इसीलिए **अन्य भाषा** के वरदान को ज्यादा महत्वपूर्ण मानकर अधिकतर लोग उसी के लिए प्रयत्नशील (आकांक्षी) थे। इन पदों में पौलुस दो अन्य वरदानों का उल्लेख

करता है जिनके बारे में उसने इससे पहले के परिच्छेदों में नहीं लिखा था : **परोपकारी** (सहायक) और **प्रबन्धक**। **परोपकार** या **सहायता** के वरदान से सम्पन्न लोगों में दूसरों की सेवा-सहायता करने का परमेश्वर-प्रदत्त बोझ होता है। इसके अलावा पवित्र आत्मा की ओर से कुछ लोगों को मंडली की सुव्यवस्थित ढंग से अगुवाई, प्रबन्धन एवं संचालन की योग्यता प्रदान की जाती है, जो **प्रशासन** या प्रबन्धन का वरदान है। सृष्टि-रचना के समय भी प्रभु परमेश्वर ने प्रत्येक कार्य को क्रमानुसार एवं सुव्यवस्थित ढंग से सम्पन्न किया। वह "अपनी देह" को भी इसी प्रकार कार्य करते देखना चाहता है (प0कुरि0 14:40)। इसीलिए उसने अपनी देह के कुछ सदस्यों को 'प्रबन्धक' का वरदान प्रदान किया है।

"क्या सब प्रेरित हैं? क्या सब नबी हैं? क्या सब शिक्षक हैं? क्या सब सामर्थ्य का काम करने वाले हैं? क्या सब को चंगा करने का वरदान मिला है? क्या सब अन्य अन्य भाषाएं बोलते हैं? क्या सब उनका अर्थ बताते हैं?" (प0कुरि0 12:29-30)। पौलुस द्वारा इन पदों में प्रस्तुत प्रश्न कुरिन्थुस की मंडली के लोगों के नासमझीपन एवं शारीरिकता का पर्दाफाश करते हैं। शारीरिकता के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर सत्य की अनदेखी की जाती है (इफि0 4:17-18)। अतः कभी-कभी हमारे समक्ष पेश किए जाने वाले कड़वे सवाल हमें हमारी शारीरिकता दर्शाने का साधन हो सकते हैं।

"तुम बड़े से बड़े वरदान की धुन में रहो। परन्तु मैं तुम्हें सब से उत्तम मार्ग दर्शाता हूं" (प0कुरि0 12:31)। पौलुस के अनुसार,

यहां जिन वरदानों का ज़िक्र किया गया है, इनसे बढ़कर भी **वरदान** हैं। हमें उन्हीं का आकांक्षी होना चाहिए। इन श्रेष्ठतर वरदानों का पहला कुरिन्थियों के चौदहवें अध्याय में ज़िक्र किया गया है, यहां नहीं। परन्तु पौलुस ने सभी वरदानों और बड़े से बड़े या श्रेष्ठतर वरदानों से उत्तम यानि एक सर्वोच्च मार्ग भी दर्शाया है, जिसका पहला कुरिन्थियों के तेरहवें अध्याय में वर्णन किया गया है। यह "सबसे उत्तम मार्ग" क्या है? इस पर अगले अध्याय में विचार किया गया है।

नौ

कुरिन्थुस के विश्वासी शारीरिकता के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहे थे, और 'अन्य भाषा' के वरदान को सबसे बड़ा सोचकर हरेक जन 'अन्य भाषा' बोलने की ही चाहत में था। तब पौलुस ने उन्हें यह समझाया कि पवित्र आत्मा द्वारा अनेक वरदान दिए गए हैं और प्रत्येक वरदान मंडली के लिए लाभप्रद एवं आवश्यक है। चूंकि उनका जीवन शारीरिकता के अधीन था, इसलिए वह लोग सिर्फ अपने स्वार्थ एवं बड़ाई की ही चिन्ता कर रहे थे। वे मसीह की सम्पूर्ण देह (मंडली या कलीसिया) की भलाई की चिन्ता नहीं कर रहे थे। अतः पहला कुरिन्थियों की पत्री के बारहवें अध्याय के अन्त में पौलुस ने मंडली के लिए सबसे महत्वपूर्ण (श्रेष्ठतर) वरदानों का ज़िक्र किया। उसके अनुसार कुरिन्थुस के विश्वासियों को इन्हीं श्रेष्ठतर (बड़े से बड़े) वरदानों की धुन में रहना था। इतना ही नहीं, बल्कि बारहवें अध्याय के अन्त में पौलुस ने यह कहा : **परन्तु मैं तुम्हें सब से उत्तम मार्ग दर्शाता हूं।** तब उसने तेरहवें अध्याय की बात लिखी – अर्थात् मसीही विश्वासी के जीवन से प्रवाहित होने वाला परमेश्वर का **प्रेम**, और यही **सर्वोत्तम मार्ग** है। पवित्र **आत्मा** के अधीन ईश्वरीय प्रेम का जीवन-मार्ग, स्वार्थ-सिद्धि एवं अपनी बड़ाई वाले शारीरिकतापूर्ण मार्ग से श्रेष्ठतर है, भले ही अहम्मान (अपनी प्रशंसा) का मार्ग कभी-कभी आध्यात्मिक प्रतीत होता हो।

"यदि मैं मनुष्यों और स्वर्गदूतों की भाषाएं बोलूं पर प्रेम न

रखूं तो मैं ठनठनाती घंटी और झनझनाती झांझ हूं" (प0कुरि0 13:1)। यहां स्पष्ट लिखा है कि "यदि मैं मनुष्यों और स्वर्गदूतों की भाषाएं बोलूं"। हां, हो सकता है कि हम परमेश्वर के वचन बोलें और अन्य भाषाओं में बोलें, लेकिन "**प्रेम**" न हो, तो यह सुनने वालों के लिए केवल अशांति (विध्न, बाधा), परेशानी या चिढ़न पैदा करने वाली आवाज मात्र है। जैसे कि बच्चों द्वारा की जाने वाली भड़भड़ाहट, झनझनाहट व चीख-चिल्लाहट से किसी को कोई सीख या सहायता नहीं मिलती। इसी प्रकार हल्ला करने, चीखने-चिल्लाने वाले मसीहियों के द्वारा किसी को परमेश्वर के ज्ञान में बढ़ने का अवसर नहीं मिल सकता। चूंकि कुरिन्थुस के अनेक विश्वासी शारीरिकता का जीवन व्यतीत कर रहे थे और उनका "अन्य भाषा बोलना" परमेश्वर की ओर से नहीं था, इसलिए दूसरों के लिए ठोकर का कारण था।

"यदि मुझे नबूवत करने का वरदान प्राप्त हो और मैं सब भेदों तथा सब प्रकार के ज्ञान को जानूं, और यदि मुझे यहां तक पूर्ण विश्वास हो कि मैं पहाड़ों को हटा सकूं, पर प्रेम न रखूं तो मैं कुछ भी नहीं हूं। यदि मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति कंगालों को खिलाने के लिए दान कर दूं, और अपनी देह जलाने के लिए सौंप दूं, परन्तु प्रेम न रखूं, तो मुझे कुछ भी लाभ नहीं" (प0कुरि0 13:2-3)। यदि हमारे पास भविष्यवाणी का वरदान हो और परमेश्वर तथा उसके वचन का बड़ा ज्ञान हो तथा पहाड़ हटा देने वाला बड़ा विश्वास हो, लेकिन सच्चा **प्रेम** न हो, तो पौलुस के अनुसार हम कुछ भी नहीं हैं। इसके अतिरिक्त यदि हम अपना सब कुछ दान

देकर गरीबों की मदद करते हों और आत्म-त्याग में आगे हों मगर प्रेम से वंचित हों तो इन सब से हमें कोई लाभ नहीं होगा। पौलुस कहता है कि यह सब परोपकारी कार्य व्यर्थ हैं और इनसे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता, जब तक कि (पवित्रा आत्मा प्रदत्त) **प्रेम** इनका प्रेरणा-स्रोत या आधार नहीं।

"प्रेम धैर्यवान है, प्रेम दयालु है और वह ईर्ष्या नहीं करता। प्रेम डींग नहीं मारता, अहंकार नहीं करता, अभद्र व्यवहार नहीं करता, अपनी भलाई नहीं चाहता, झुंझलाता नहीं, बुराई का लेखा नहीं रखता, अधर्म से आनन्दित नहीं होता, परन्तु सत्य से आनन्दित होता है। सब बातें सहता है, सब बातों पर विश्वास करता है, सब बातों की आशा रखता है, सब बातों में धैर्य रखता है" (प0कुरि0 13:4-7)। यहां संत पौलुस ने सच्चे बाइबॅलीय प्रेम की विशेषताओं का वर्णन किया है। सच्चा बाइबॅलीय **प्रेम** मनुष्य के शारीरिक प्रेम से बिल्कुल भिन्न है। बाइबॅलीय प्रेम कोई महसूसियत नहीं, बल्कि सक्रिय कार्य-व्यवहार है। प्रायः किसी व्यक्ति के किसी बात या व्यवहार से ठोकर लगने पर हमारा शारीरिक प्रेम उस व्यक्ति के प्रति क्रोधित, ईर्ष्यालु और बदला लेने वाला रुख अपना लेता। इसके विपरीत, बाइबॅलीय **प्रेम** में जीवन-व्यवहार करने वाला व्यक्ति दूसरों से लगी ठोकर की अनदेखी करते हुए क्षमा प्रदान करता है। पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने पर **ईश्वरीय प्रेम** सारे पापों के ऊपर (परे) उठ जाता है। *"सब प्रकार की कड़ुवाहट, रोष, क्रोध, कलह और निन्दा, सब प्रकार के बैर-भाव सहित तुम से दूर किए जाएं। एक दूसरे के प्रति दयालु और करुणामय बनो, और परमेश्वर*

ने मसीह में जैसे तुम्हारे अपराध क्षमा किए, वैसे ही तुम भी एक दूसरे के अपराध क्षमा करो" (इफि0 4:31-32)। परमेश्वर का प्रेम शर्त-विहीन प्रेम है अर्थात् शारीरिक प्रेम की तरह दूसरों से प्रेम पाने की आशा व आधार पर लोगों से प्रेम नहीं करता। परमेश्वर बिना मूल्य लिए और बिना शर्त हमसे प्रेम करता है, भले ही हम में से कोई भी उसके प्रेम का पात्र (होने) लायक नहीं है। इस (अगापे) ईश्वरीय प्रेम का सबसे महान आदर्श हमारा प्रभु यीशु मसीह है : *"जब हम निर्बल ही थे तब ठीक समय पर मसीह भक्तिहीनों के लिए मरा। दुर्लभ है कि किसी धर्मी मनुष्य के लिए कोई मरे; पर हो सकता है कि किसी भले मनुष्य के लिए कोई मरने का साहस भी कर ले। परन्तु परमेश्वर अपने प्रेम को हमारे प्रति इस प्रकार प्रदर्शित करता है कि जब हम पापी ही थे मसीह हमारे लिए मरा"* (रोमियों 5:6-8)। हमारी शारीरिकता अपने प्राकृतिक स्वभाव के अनुरूप ही कार्य-व्यवहार कर सकती है। इसीलिए स्वाभाविक तौर पर हमारे शारीरिक जीवन से ईश्वरीय प्रेम प्रवाहित नहीं हो सकता; केवल शर्तयुक्त शारीरिक प्रेम ही प्रवाहित होगा। परन्तु विश्वासीजन को एक नया स्वभाव प्रदान किया गया है, अर्थात् मसीह का स्वभाव। अतः **आत्मा** की अधीनता में जीवन व्यतीत करने पर मसीह का प्रेम स्वभावतः प्रकट होता है।

"प्रेम धैर्यवान है, प्रेम दयालु है और वह ईर्ष्या नहीं करता। प्रेम डींग नहीं मारता, अहंकार नहीं करता" (प0कुरि 13:4)। इसीलिए पौलुस सच्चे बाइबॅलीय प्रेम अर्थात् ईश्वरीय प्रेम की प्रमुख विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित करता है (प0कुरि 13:4-7) :-

धैर्यवान : शारीरिक प्रेम झटपट नाराज हो जाता है या बुरा मानने लगता है। ईश्वरीय प्रेम धीरजपूर्वक अपमान एवं तिरस्कार को सहता है और बदला नहीं लेता। मसीह के जीवन में इस प्रेम के प्रकटीकरण के बहुत से उदाहरण पाए जाते हैं : *"और मुख्य याजक उस पर बहुत बातों का दोष लगा रहे थे। पिलातुस ने उस से यह कहते हुए फिर पूछा, 'क्या तू उत्तर नहीं देता? देख, वे तेरे विरुद्ध कितने दोष लगा रहे हैं।' परन्तु यीशु ने कोई और उत्तर नहीं दिया – इससे पिलातुस को आश्चर्य हुआ"* (मर0 15:3-5)।

दयालु : परमेश्वर का प्रेम दयालु होता है, भले ही दूसरा जन हमसे दया पाने के लायक न हो। हमारे साथ दूसरा जन चाहे जैसा व्यवहार करे, यदि हम पवित्र आत्मा के चलाए चल रहे हैं तो हमारे जीवन से दयालुता ही प्रकट होगी।

ईर्ष्या नहीं करता : यदि हम पवित्र आत्मा के अनुसार जीवन बिता रहे हैं तो दूसरों के सुखी जीवन को देखकर ईर्ष्यालु नहीं होंगे, बल्कि दूसरों के लिए सुखद एवं सम्पन्न जीवन की कामना करेंगे।

डींग नहीं मारता : पवित्र आत्मा के अधीन जीवन-व्यवहार करने वाले, "मसीह में" अपनी अवस्था एवं आत्मिक आशिष-अधिकार पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, न कि 'मनुष्यों को प्रभावित करने वाली दिखावटी बातों' पर। हां, शारीरिकता के अधीन होने पर हम अपनी बड़ाई, अहम्मान एवं अपनी प्रशंसा चाहते हैं। सच्चे ईश्वरीय प्रेम में अहम्मन्यता और आत्म-प्रदर्शन का स्थान नहीं होता।

अहंकार नहीं करता : पवित्र आत्मा में जीवन व्यतीत करने

वाले की दृष्टि प्रभु पर केन्द्रित होती है, जो सब कुछ और सबसे महत्वपूर्ण है, न कि अपने ऊपर जो कि कुछ भी नहीं (नाचीज़) है।

अभद्र व्यवहार नहीं करता : आत्मा के अधीन जीने वाला व्यक्ति दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील होता है और दूसरों के प्रति अप्रिय, अपमानजनक, अहितकारी या आपत्तिजनक व्यवहार नहीं करता। किसी के प्रति आक्रामक, अनुचित या अभद्र रवैया नहीं अपनाता।

अपनी भलाई (स्वार्थ) नहीं चाहता : आत्मा के चलाए चलने वालों में सच्चा आत्म-त्याग पाया जाता है। मसीहियत में न तो हमें अपने को ऊंचा समझना है और न ही नीचा। बल्कि हमें अपने **स्वार्थ** (आपे) के बारे में सोचना ही नहीं है।

बुराई का लेखा नहीं रखता : आत्मा की अधीनता में जीने वाले लोग बदले या प्रतिकार की भावना को अपने जीवन में घोंसला नहीं बनाने देते। इसके विपरीत, उनके प्रति बुरा व्यवहार करने वालों के साथ केवल क्षमा, दया और मेल-मिलाप व शांति ही बांटते हैं।

अधर्म से आनन्दित नहीं होता : आत्मा के चलाए चलने वाला विश्वासी दूसरे किसी को पाप में गिरते देखकर आनन्दित नहीं होता। वह तो लोगों को पवित्र आत्मा के अनुसार जीवन जीते देखना चाहता है।

सत्य से आनन्दित होता है : पवित्र आत्मा के प्रेम की प्रेरणा

से जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति परमेश्वर के लोगों की सच्ची आत्मिक उन्नति का आकांक्षी होता है।

सब बातें सहता, विश्वास करता, आशा व धैर्य रखता है : पवित्र आत्मा की अधीनता में चलने वाला विश्वासी अपने स्वर्गिक प्रेमी पिता पर आशा-भरोसा रखते हुए आंधी-तूफान जैसी दिखने वाली जीवन की समस्त विध्न-बाधाओं एवं दुख-तकलीफों को शांतिपूर्वक, विनम्रतापूर्वक एवं धैर्यपूर्वक सहन करता है। सुसमाचारों में **मसीह** की जीवनी पढ़ने पर इस ईश्वरीय प्रेम की सारी विशेषताएं सुस्पष्ट हैं। स्मरण रहे ! हमें मसीह का जीवन प्रदान किया गया है। जिस हद तक हम **आत्मा** के अनुसार जीवन बिताएंगे, उस हद तक मसीह के जीवन के गुण प्रयासरहित एवं स्वाभाविक तौर पर हमारे जीवन-गुण के रूप में प्रकट होंगे।

"प्रेम कभी मिटता नहीं। नबूवते हों तो समाप्त हो जाएंगी, भाषाएं हों तो जाती रहेंगी; और ज्ञान हो तो लुप्त हो जाएगा" (प0कुरि0 13:8)। यहां पौलुस ने पुनः शारीरिकता के जीवन की मूर्खता को दर्शाया है। कुरिन्थुस के विश्वासी उन चीजों (वरदानों) पर अहंकार कर रहे थे जो शीघ्र ही समाप्त होने वाली थीं। अर्थात् ऐसे वरदानों के पीछे थे जो कलीसिया के लिए शीघ्र ही अनावश्यक होने वाले थे। परन्तु परमेश्वर का प्रेम (ईश्वरीय प्रेम) कभी भी नहीं समाप्त होगा। शरीर के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर हमारा मन वर्तमान परिस्थितियों पर ही केन्द्रित रहता है, **मसीह यीशु** पर नहीं। ऐसे समय हम सत्य के प्रति गलतफहमी के शिकार होते हैं और शाश्वत् महत्व की बातों पर मन लगाने के बजाए कम महत्वपूर्ण

(अस्थायी) बातों पर ज्यादा मन लगाते हैं।

"क्योंकि हमारा ज्ञान अधूरा है और हमारी नबूवतें अधूरी हैं। परन्तु जब सर्वसिद्ध आएगा तो अधूरापन मिट जाएगा" (प0कुरि 13:9-10)। यहां पौलुस सत्य के बारे में लिख रहा है। प्रभु यीशु का वायदा था कि जब पवित्र आत्मा आएगा तो उसके चेलों की "सब सत्य" में अगुवाई करेगा, और (पिन्तेकुस्त के दिन से) पवित्र आत्मा ऐसा ही कर रहा है। इस पत्री की रचना के समय भी पवित्र आत्मा कलीसिया के लिए सत्य की प्रकाशना कर रहा था। पवित्रशास्त्र बाइबॅल के रूप में सम्पूर्ण सत्य की प्रकाशना का कार्य पूरा होने पर इस प्रकाशना हेतु प्रयुक्त वरदान अनावश्यक होने वाले थे। अब पवित्र आत्मा कलीसिया के लिए आवश्यक **सम्पूर्ण सत्य** का प्रकटन कर चुका है। यही परमेश्वर का वचन (पवित्रशास्त्र बाइबॅल) है। अब पवित्र आत्मा कलीसिया के लिए कोई 'नया सत्य' प्रकट नहीं करता, बल्कि परमेश्वर के वचन बाइबॅल में लिखित सत्य को ही सिखाता, समझाता, स्पष्ट या प्रकट करता है। इसलिए अब उन वरदानों की आवश्यकता नहीं रह गई जिनका इस्तेमाल करते हुए पवित्र आत्मा ने प्राचीन समय में (प्रारम्भिक कलीसिया पर) **ईश्वरीय** सत्य प्रकट किया।

"जब मैं बालक था तो बालक के समान बोलता, बालक के समान सोचता और बालक के समान समझता था, परन्तु जब सयाना हुआ तब बालकपन की बातें छोड़ दीं। अभी तो हमें दर्पण में धुंधला सा दिखाई पड़ता है, परन्तु उस समय आमने-सामने देखेंगे; इस समय मेरा ज्ञान अधूरा है, परन्तु उस समय पूर्ण रूप से

जानूंगा, जैसा मैं स्वयं भी पूर्ण रूप से जान गया हूं" (प0कुरि0 13:11-12)। प्रारम्भिक कलीसिया पर ईश्वरीय सच्चाईयों का प्रकटन करते समय प्रभु परमेश्वर ने नबूवतों, अन्य भाषाओं और ज्ञान-बुद्धि के वरदानों का उपयोग किया। परन्तु 'सम्पूर्ण सत्य' की प्रकाशना पूर्ण हो जाने पर कलीसिया में वह वरदान नहीं रहे जो उसकी "अपरिपक्वता" (सम्पूर्ण सत्य के प्रकटन रहित या उसके बालकपन) की अवस्था में आवश्यक थे।

कलीसिया को दिया गया ईश्वरीय सत्य, उसके लिए दर्पण में देखने वाले व्यक्ति जैसा है। पौलुस के समय में दर्पण किसी पालिश किए हुए धातु का होता था, इसलिए उसमें निहारने वाला व्यक्ति अपने चेहरे का धुंधला प्रतिबिम्ब या रूप ही देखता था। पवित्र आत्मा द्वारा सम्पूर्ण सत्य प्रकट किए जाने से पूर्व कलीसिया के लिए भी ऐसा ही था। बहरहाल, वह दिन दूर नहीं था जबकि परमेश्वर के वचन (पवित्रशास्त्र) द्वारा सम्पूर्ण सत्य स्पष्ट एवं प्रकट होना था। सम्पूर्ण सत्य के प्रकटन से पूर्व नबूवतों, अन्य भाषाओं और ज्ञान-बुद्धि के वरदानों से लोगों को जो सीमित समझ प्राप्त होती थी, वह दर्पण के धुंधले प्रतिबिम्ब समान थी। परन्तु जब सम्पूर्ण ईश्वरीय सत्य प्रकाशित (प्रकट) हो गया तब सीमित समझ प्रदान करने वाले साधनों का काम समाप्त हो गया।

"अब विश्वास, आशा, प्रेम ये तीनों स्थायी हैं, परन्तु इनमें सब से बड़ा प्रेम है" (प0कुरि0 13:13)। 'समाप्त व लुप्त होने' वाली चीजों की बात करने के बाद पौलुस ने **स्थायी** चीजों का उल्लेख किया। अर्थात् **विश्वास, आशा** और **प्रेम**। इन तीनों में से

सबसे महान **प्रेम** है। क्योंकि प्रेम सदा-सर्वदा कायम रहेगा। हां, स्वर्ग में जाने पर विश्वास और आशा अनावश्यक हो जाएंगे, क्योंकि हम प्रभु परमेश्वर की उपस्थिति में होंगे और उसके सारे वायदों का साक्षात् दर्शन करेंगे। अतः सबसे महान एवं महत्वपूर्ण वही है जो सदा-सर्वदा कायम रहेगा, अर्थात् (परमेश्वर-प्रदत्त) **प्रेम**। हां, परमेश्वर-प्रदत्त **प्रेम** ही विश्वासी के जीवन स्वभाव की अनन्त विशेषता है।

दस

कुरिन्थुस की कलीसिया को सम्बोधित इस पत्री की प्रमुख बात को पुनः स्मरण करना जरूरी है। वे शारीरिक जीवन व्यतीत कर रहे थे, और पवित्र आत्मा द्वारा दिए गए वरदानों के सच्चे उद्देश्य की अनदेखी कर रहे थे। इतना ही नहीं, वे इन वरदानों को मंडली के सब लोगों की भलाई (आत्मिक उन्नति) के लिए इस्तेमाल करने के बजाय अपनी बड़ाई व नाम कमाई में लगे हुए थे। इसलिए इस पूरी पत्री में पौलुस उन्हें पुनः उन बुनियादी बातों को सिखाता-समझाता है जिनसे उन्हें सुपरिचित होना चाहिए था। इस प्रकार उन्हें उनकी शारीरिकता से अवगत कराते हुए, विश्वास एवं अनुग्रह के आधार पर जीवन व्यतीत करने की ओर, मनफिराव का प्रोत्साहन दे रहा था।

जैसा कि हमने देखा, इस पत्री के बारहवें अध्याय के अन्त में पौलुस ने यह लिखा है : "बड़े से बड़े (श्रेष्ठतर) वरदानों की धुन में रहो"। *"प्रेम का पीछा करो और आत्मिक वरदानों की धुन में रहो, विशेषकर यह कि तुम भविष्यवाणी करो"* (प0कुरि0 14:1) इसके साथ हमें तेरहवें अध्याय के आत्मिक वरदानों सम्बन्धी शिक्षा को भी स्मरण रखना है, जहां पौलुस ने कहा कि बड़े या आध्यात्मिक प्रतीत होने वाले काम करने के बावजूद यदि हमारे जीवन में (परमेश्वर का) **प्रेम** (सक्रिय) नहीं है, तो हमारा सारा धर्म-कर्म व्यर्थ है। इसीलिए चौदहवें अध्याय के पहले पद में पौलुस

यह कहता है कि **आत्मिक वरदानों का पीछा** करना अच्छी बात है, लेकिन यह **आत्मा** में होना चाहिए, तभी इससे सारी देह (मंडली) की भलाई (आत्मिक उन्नति) होगी। जिस हद तक हमारे आत्मिक वरदान **आत्मा** व **प्रेम** में क्रियाशील होंगे, उस हद तक आत्मा के उद्देश्य के लिए इस्तेमाल होंगे, न कि हमारी बड़ाई या नाम कमाई के लिए। उपर्युक्त पहले पद पर पुनः ध्यान दें : "... **आत्मिक वरदानों की धुन में रहो, विशेषकर यह कि तुम भविष्यवाणी करो**"। पौलुस ने ऐसा क्यों लिखा? आगे के पदों पर ध्यान दें : *"क्योंकि जो अन्य भाषा में बोलता है वह मनुष्यों से नहीं परन्तु परमेश्वर से बातें करता है, क्योंकि उसकी कोई नहीं समझता, परन्तु वह आत्मा में भेद की बातें बोलता है। परन्तु जो भविष्यवाणी करता है वह आत्मिक उन्नति, उपदेश तथा सान्त्वना देने के लिए मनुष्यों से बोलता है। जो अन्य भाषा में बोलता है वह अपनी ही उन्नति करता है, परन्तु जो भविष्यवाणी करता है वह कलीसिया की उन्नति करता है। अब मैं चाहता तो हूँ कि तुम सब अन्य भाषाएं बोलते, परन्तु इससे भी बढ़कर यह कि तुम भविष्यवाणी करो, क्योंकि जो भविष्यवाणी करता है, वह उस से भी बढ़कर है जो अन्य भाषाओं में बोलता तो है, पर अनुवाद नहीं कर सकता कि कलीसिया की उन्नति हो"* (प0कुरि0 14:2-5)। यहां जिस भविष्यवाणी या नबूवत के वरदान की बात की गई है उससे सारी मंडली को शिक्षा मिलती है और आत्मिक उन्नति होती है। अतः इस वरदान से सारी कलीसिया लाभान्वित होती है। परन्तु 'अन्य भाषा' को केवल परमेश्वर तथा (संभवतः) उस 'अन्य भाषा' को बोलने वाला ही समझते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस बात

को सभी लोग नहीं समझेंगे, उससे वहां उपस्थित लोगों को आत्मिक लाभ या प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। क्या भोजन खाते समय उसे हम सिर्फ इसलिए चबाते हैं कि हमारा मुंह मात्र स्वस्थ रहे या शक्ति पाए? नहीं। भोजन का उद्देश्य हमारी सम्पूर्ण देह को पौष्टिक आहार प्रदान करना है, सिर्फ किसी एक अंग को नहीं। कलीसिया के बारे में भी यही बात सच है। स्मरण रहे, कलीसिया, मसीह की **देह** है। पवित्र आत्मा प्रदत्त वरदान सारी देह (मंडली) की उन्नति व भलाई हेतु हैं, सिर्फ वरदान पाने वाले एवं उपयोग करने वाले के लिए ही नहीं। स्पष्ट है कि यह सब बताते हुए पौलुस ने कुरिन्थुस के मसीहियों के शारीरिकता-केन्द्रित कार्य-व्यवहार की ओर इशारा किया। शरीर के अनुसार जीवन व्यतीत करने पर हमारा मन आध्यात्मिक से इहलौकिक की ओर चला जाता है। तब हम मसीह यीशु पर आश्रित एवं उसमें लवलीन रहने के बजाय अपनी पार्थिव परिस्थितियों पर ही मन लगाने लगते हैं और ईश्वरीय सच्चाईयों की अनदेखी करते हैं (इफि0 4:17-18)।

"भाइयो, अपनी समझ में बच्चे न बनो। वैसे बुराई में तो शिशु बने रहो, परन्तु समझ में सयाने हो जाओ। व्यवस्था में लिखा है कि प्रभु कहता है, 'मैं विदेशी भाषा बोलने वाले तथा विदेशियों के होठों से इस जाति से बातें करूंगा, फिर भी ये मेरी नहीं सुनेंगे'। अतः अन्य भाषाएं विश्वासियों के लिए नहीं पर अविश्वासियों के लिए चिन्ह हैं, परन्तु भविष्यवाणी अविश्वासियों के लिए नहीं पर विश्वासियों के लिए चिन्ह है" (प0कुरि0 14:20-22)। बाईसवें पद के अनुसार "अन्य भाषाएं" अविश्वासियों के लिए हैं, और

भविष्यवाणी विश्वासियों के लिए। शारीरकिता के अधीन जीवन व्यतीत करने के कारण कुरिन्थुस के मसीही लोग अविश्वासियों के लिए दी गई चीज (वरदान) को मंडली में इस्तेमाल करने लगे थे; और मंडली की आत्मिक उन्नति, शिक्षा व प्रोत्साहन हेतु दिए गए वरदान की अवहेलना कर रहे थे। शारीरिकता एवं अहं-केन्द्रित होने के कारण वे सत्य के प्रति ईश्वरीय दृष्टिकोण नहीं अपना रहे थे।

"भाइयो, फिर क्या करना चाहिए? जब तुम एकत्रित होते हो तो प्रत्येक के मन में भजन या उपदेश या प्रकाशन या अन्य भाषा या अन्य भाषा का अनुवाद होता है। सब कुछ ***आत्मिक उन्नति*** *के लिए होना चाहिए"* (प0कुरि0 14:26)। कलीसिया की सत्य में अगुवाई करते हुए आत्मिक उन्नति करना ही पवित्र आत्मा की सेवकाई का उद्देश्य है। उसके द्वारा दिए गए दान-वरदान एवं योग्यताएं भी इसी सेवा-उद्देश्य के लिए हैं। इसीलिए जब हरेक विश्वासी जन **आत्मा** के चलाए जीवन व्यतीत करता है, तब पवित्र आत्मा द्वारा दिए हुए वरदान में सक्रिय रहता है। इसके परिणामस्वरूप ऐसे विश्वासियों से मंडली को आवश्यकतानुसार उन्नति-योगदान प्राप्त होता है, जिससे मंडली प्रोत्साहित, सुदृढ़ व आत्मिक तौर से उन्नतिशील रहती है। यद्यपि आजकल हमारे पास परमेश्वर का सम्पूर्ण वचन (पवित्र शास्त्र) है और प्रारम्भिक मंडली के लिए नये-नये सत्य को प्रकट करने हेतु उस समय पवित्र आत्मा द्वारा इस्तेमाल किए गए अनेक वरदान अब आवश्यक नहीं हैं, तथापि आज भी पवित्र आत्मा की सेवकाई एवं उसका उद्देश्य वही है : **सत्य में अगुवाई करते हुए मंडली की आत्मिक उन्नति।**

"फिर भी सब बातें उचित रीति से और क्रमानुसार की

जाएं" (प0कुरि0 14:40)। जैसा कि हमने विचार किया, कुरिन्थुस की मंडली के लोग शारीरिकता का जीवन व्यतीत कर रहे थे और उनकी कलीसियाई सभाओं में अनुशासनहीनता थी। यहां तक कि प्रभु-भोज की सभाओं में भी अशोभनीय व्यवहार हो रहा था। आराधना-सभाओं में पवित्र आत्मा की अगुवाई की अनदेखी की जा रही थी, और आत्म-प्रदर्शन एवं अहम्मान का दिखावा हो रहा था। इस प्रकार उस मंडली की गतिविधियां ईश्वरीय दिशा व दृष्टि से दूर, अनुशासनहीन और अनियंत्रित हो रही थीं। अतः पौलुस यह कहता है कि सब कुछ उचित रीति से एवं व्यवस्थित ढंग से होना चाहिए। यह सिर्फ पवित्र आत्मा की अगुवाई एवं अधीनता में ही संभव है।

ग्यारह

"हे भाइयो, अब मैं तुम्हें वही सुसमाचार सुनाता हूं जिसका मैंने तुम्हारे मध्य प्रचार किया, जिसे तुमने ग्रहण भी किया और जिसमें तुम स्थिर हो, जिसके द्वारा उद्धार भी पाते हो, इस शर्त पर कि तुम उस वचन को जिसका मैंने तुम्हारे मध्य प्रचार किया दृढ़ता से थामे रहो– अन्यथा तुम्हारा विश्वास करना व्यर्थ हुआ। मैंने यह बात जो मुझ तक पहुंची थी उसे सब से मुख्य जानकर तुम तक भी पहुंचा दी, कि पवित्रशास्त्र के अनुसार मसीह हमारे पापों के लिए मरा और गाड़ा गया, तथा पवित्र शास्त्र के अनुसार तीसरे दिन जी भी उठा" (प0कुरि0 15:1-4)।

मृतकों के पुनरुत्थान के बारे में भी कुरिन्थुस के विश्वासियों में गलतफहमी थी, और यह भी उनके शारीरिक आचरण का एक प्रतीक था। अपनी शारीरिकता में वे सत्य के प्रति अन्धों के समान हो रहे थे और सत्य की समझ के लिए पवित्र आत्मा पर आशा-भरोसा करने के विपरीत अपनी मानुषिक ज्ञान-बुद्धि के अहंकार में जीने लगे थे। वहां पौलुस के सुसमाचार प्रचार के परिणामस्वरूप वे उद्धार पाए थे। उसने उन्हें यह सुसमाचार सुनाया था कि मसीह यीशु उनके पापों के बदले मरा, गाड़ा गया और तीसरे दिन जीवित हो उठा। तीसरे पद में पौलुस के इन शब्दों पर ध्यान दें : *"मैंने तुमको सबसे पहले वह प्रमुख सत्य पहुंचा दिया, जो मुझे प्राप्त हुआ था"*। पौलुस को प्रभु परमेश्वर ने सुसमाचार

प्रदान किया था, जिसे आगे चलकर उसने कुरिन्थियों को दिया। यह सुसमाचार पौलुस के दिलो-दिमाग की उपज नहीं थी, बल्कि प्रभु यीशु के वायदे के अनुसार पवित्र आत्मा ने सत्य में उसकी अगुवाई किया (यूह0 16:13-14)।

"तब वह कैफा को, फिर बारहों को दिखाई दिया। इसके पश्चात् वह पांच सौ से अधिक भाइयों को एक साथ दिखाई दिया, जिनमें से अधिकांश अब तक जीवित हैं, पर कुछ सो गए। तब वह याकूब को दिखाई दिया, और फिर सब प्रेरितों को" (प0कुरि0 15:5-7)। कुरिन्थुस के विश्वासियों को पौलुस ने यह भी याद दिलाया कि मृतकों में से पुनः **जीवित हो उठे** मसीह यीशु को प्रेरितों तथा अन्य बहुत से लोगों ने देखा। उसके पुनः जी उठने के बाद वे उसके साथ बातचीत किए, उसके साथ भोजन किए और शिक्षा प्राप्त किए (प्रेरित0 1:3)। तब पौलुस यह भी कहता है कि सब से अन्त में उसे भी दिखाई दिया : *"और सब से अंत में मुझे भी दिखाई दिया, जो मानो अधूरे समय का जन्मा हूं। मैं प्रेरितों में सब से छोटा हूं जो प्रेरित कहलाने के योग्य भी नहीं, क्योंकि मैंने परमेश्वर की कलीसिया को सताया था। फिर भी परमेश्वर के अनुग्रह से मैं अब जो हूं सो हूं। मेरे प्रति उसका अनुग्रह व्यर्थ नहीं ठहरा, परन्तु मैंने उन सब से बढ़कर परिश्रम किया, फिर भी मैंने नहीं, परन्तु परमेश्वर के अनुग्रह ने मेरे साथ मिलकर किया। अतः चाहे मैं हूं, चाहे वे हों, हम यही प्रचार करते हैं, और इसी पर तुमने विश्वास किया"* (प0कुरि0 15:8-11)।

यहां पौलुस के दीनतापूर्ण शब्दों पर ध्यान दें – **"मैं प्रेरितों में सब से छोटा हूं जो प्रेरित कहलाने के योग्य भी नहीं"**। पौलुस यह अच्छी तरह समझता था कि वह परमेश्वर के अनुग्रह को पाने के योग्य नहीं है। परन्तु उसकी अयोग्यता एवं अपात्रता के बावजूद, प्रभु परमेश्वर ने उसे अपने अनुग्रह से आशीषित किया था। अतः परमेश्वर की सेवकाई के लिए प्रेरणा का श्रेय उसने परमेश्वर के अनर्जित अनुग्रह को ही दिया (फिलि0 2:13; कुलु0 1:29)।

"अब यदि मसीह का यह प्रचार किया जाता है कि वह मृतकों में से जिलाया गया है तो तुम में से कुछ यह क्यों कहते हैं कि मरे हुओं का पुनरुत्थान है ही नहीं? यदि मरे हुओं का पुनरुत्थान नहीं है तो मसीह भी नहीं जिलाया गया। और यदि मसीह जिलाया नहीं गया तो हमारा प्रचार करना व्यर्थ है, और तुम्हारा विश्वास भी व्यर्थ है। इस से भी बढ़कर हम परमेश्वर के झूठे गवाह ठहरते हैं, क्योंकि हमने परमेश्वर के विषय में यह साक्षी दी कि उसने मसीह को जिला उठाया। परन्तु यदि मृतक वास्तव में नहीं जिलाए जाते तो उसने मसीह को भी नहीं जिलाया। क्योंकि यदि मृतक जिलाए नहीं जाते तो मसीह भी जिलाया नहीं गया है, और यदि मसीह नहीं जिलाया गया है तो तुम्हारा विश्वास व्यर्थ है। तुम अब तक अपने पापों में पड़े हो। तब तो वे भी जो मसीह में सो गए हैं, नाश हो गए। यदि हमने केवल इसी जीवन में मसीह पर आशा रखी है तो हमारी दशा सब मनुष्यों से अधिक दयनीय है" (प0कुरि0 15:12-19)। यहां कुरिन्थुस की मंडली में गलत शिक्षा का पर्दाफाश किया गया है। पौलुस ने अपनी तर्कसंगत बातों (सच्चाईयों) के द्वारा कुरिन्थुस के

विश्वासियों को गम्भीरता से विचार करने के लिए प्रोत्साहित किया। जबकि उन्हें यह शिक्षा दी गई थी कि मसीह यीशु मृतकों में से पुनः जीवित हो गया है, तो उनमें से कुछ लोग यह कैसे सिखा रहे थे कि मसीह में मरने वालों का पुनरुत्थान नहीं होगा? ऐसा सिखाना मसीह के पुनरुत्थान से इन्कार करना है। यदि मसीह यीशु पुनः जीवित नहीं हुआ, तब तो हमारा प्रचार निरर्थक है, और हमारा विश्वास करना व्यर्थ। क्योंकि किसी मृतक मुक्तिदाता का प्रचार करने और उस पर विश्वास करने से क्या लाभ? यदि मसीह यीशु पुनः जीवित नहीं हुआ तो प्रेरितों का यह कहना गलत था कि उन्होंने उसके पुनरुत्थान के पश्चात् उसके साथ भोजन किया, उससे बातचीत किया और उसका उपदेश सुना। इस प्रकार प्रेरितगण झूठे प्रमाणित होते। इतना ही नहीं, बल्कि यदि मसीह यीशु पुनः जीवित नहीं हुआ तो उसने हमारे पापों का दंड-मूल्य चुकता नहीं किया और हम अभी भी क्षमारहित व परमेश्वर-विहीन दशा में हैं, तथा जिन विश्वासियों का देहान्त हो चुका है, वह सब नरक में हैं और अनन्तकाल तक परमेश्वर से दूर। अतः उन्नीसवें पद में पौलुस यह कहता है कि यदि मसीह में प्राप्त आशा सिर्फ इहलौकिक जीवन तक ही सीमित है तब तो संसार के सभी लोगों में से हमारी दशा सर्वाधिक दयनीय हुई और कलीसिया द्वारा सही जाने वाली सारी सतावट एवं नफरत बेकार हो गई।

"पर अब तो मसीह मृतकों में से जिलाया गया है, और जो सोए हुए हैं उनमें वह पहला फल है" (प0कुरि0 15:20)। प्रभु परमेश्वर का कोटिशः धन्यवाद हो कि मसीही विश्वासियों की आशा

इहलौकिक जीवन से बहुत परे तक जाती है, और इसका एकमात्र आधार यीशु मसीह का पुनः जीवित होना है। **वह मृतकों में से पुनः जीवित हो चुका है,** और भावी (मृतकों के पुनरुत्थान रूपी) कटनी का "पहला फल" है। चूंकि वह मृतकों में से जी उठा है, (परमेश्वर की दृष्टि में) सैद्धान्तिक तौर पर हम भी उसके साथ जिलाए जा चुके हैं; और एक दिन आने वाला है जबकि हमारी देह भी जिलायी जायेगी।

"क्योंकि जब एक मनुष्य के द्वारा मृत्यु आई तो एक ही मनुष्य के द्वारा मृतकों का पुनरुत्थान भी आया। जिस प्रकार आदम में सब मरते हैं उसी प्रकार मसीह में सब जिलाए जाऐंगे" (प0कुरि0 15:21-22)। सृष्टि के प्रथम मनुष्य आदम के द्वारा हम सब आत्मिक तौर से मृतक और परमेश्वर से पृथकता की अवस्था में पैदा हुए; और ऐसी शापित देह में जी रहे हैं जिसे भौतिक रूप से मरना ही है (रोमियों 5:12)। परन्तु प्रभु यीशु मसीह को उद्धारकर्ता मानकर उस पर विश्वास करने वाला प्रत्येक जन अब आदम में से निकल कर **मसीह में** स्थापित कर दिया गया है। जिस क्षण हमने उस पर विश्वास किया, उसी क्षण हम पवित्र आत्मा द्वारा **मसीह में** स्थापित कर दिए गए और इस प्रकार उसके साथ एक होकर उसकी सारी आत्मिक आशिषों में सहभागिता पाए। *"तुम्हें मालूम है कि जब तुम अन्य जाति थे तब गूंगी मूर्तियों की ओर जिस प्रकार भटकाए जाते थे उसी प्रकार चलते थे। इसलिए मैं तुम्हें बताए देता हूं कि परमेश्वर के आत्मा के द्वारा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं कहता कि यीशु शापित है। और न पवित्र आत्मा के बिना कोई यह कह सकता है कि यीशु प्रभु है"*

(प0कुरि0 12:2-3); *"उसी में जो अपनी इच्छा की सुमति के अनुसार सब कुछ करता है, हमने भी उसके अभिप्राय के अनुसार, पहिले से ठहराए जाकर, उत्तराधिकार प्राप्त किया है"... "हम उसकी देह के अंग हैं। अतः मनुष्य अपने माता-पिता को छोड़कर अपनी पत्नी से मिला रहेगा और वे दोनों एक तन होंगे। यह रहस्य तो महान है पर मैं यह बात मसीह और कलीसिया के संदर्भ में कह रहा हूं"* (इफि0 1:11 एवं 5:30-32)। आदम में हमें उसकी मृत्यु मिली, परन्तु अब **मसीह में** हमें उसका (मसीह का) जीवन मिला है।

"पर हर एक अपने क्रम के अनुसार : प्रथम फल मसीह है, तब मसीह के आगमन पर उसके लोग" (प0कुरि0 15:23)। यहां पौलुस पुनरुत्थान के क्रम के बारे में लिखता है। सबसे पहले **मसीह** मृतकों में से जी उठा, और तत्पश्चात उसके पुनरागमन के समय उसके लोगों की देह भी जिलायी जाएगी। *"इसके पश्चात् अन्त होगा। उस समय वह समस्त शासन, अधिकार और सामर्थ्य का अन्त करके राज्य को परमेश्वर पिता के हाथ में सौंप देगा। जब तक वह अपने सब शत्रुओं को पैरों तले न कर ले, उसका राज्य करना अनिवार्य है। सब से अंतिम शत्रु जिसका अन्त किया जाएगा वह मृत्यु है"* (प0कुरि0 15:24-26)। इस प्रकार अन्त आएगा, जब कि वह अन्य सभी अधिकार व सत्ता का समापन कर देगा। हां, अपने सभी शत्रुओं का समापन करेगा, और अन्ततः मृत्यु का अन्त करेगा।

कुरिन्थुस के विश्वासी मृतकों के पुनरुत्थान सम्बन्धी इन सच्चाईयों की अनदेखी करने लगे थे, क्योंकि वे **आत्मा** के अनुसार

नहीं, **शरीर** के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहे थे। अतः इन बातों की ओर उनका ध्यानाकर्षण करते हुए, पौलुस उन्हें यह समझा रहा था कि शारीरिकता में फंसकर वे सत्य से भटक रहे हैं।

बारह

"परन्तु कोई कहेगा, 'मृतक कैसे जिलाए जाते हैं? और वे किस प्रकार की देह में आते हैं?'" (प0कुरि0 15:35)। पौलुस यह जानता था कि बहुत से लोग मृतकों के पुनः जीवित हो उठने की बात पर सवाल खड़ा करेंगे। भला सड़ी-गली देह फिर कैसे जीवित हो सकती है? *"अरे मूर्ख! जो कुछ तू बोता है जब तक वह मर न जाए जिलाया नहीं जाता"* (प0कुरि0 15:36)। मृतक को जीवित करने में प्रभु परमेश्वर की समर्थता पर केवल मूर्ख ही प्रश्न-चिन्ह लगाएंगे। पवित्र बाइबॅल के अनुसार, आदि में परमेश्वर ने इस धरती की धूल से मानव को रचा। क्या वही परमेश्वर किसी मृतक देह को पुनः जीवित नहीं कर सकता (भले ही वह मृतक शरीर बहुत समय से सड़-गल रहा हो)? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि परम प्रधान परमेश्वर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। पौलुस की बात पर ध्यान दीजिए : **"जो कुछ तू बोता है, जब तक वह मर न जाए, जिलाया नहीं जाता"**। बीज को फलवंत होने के लिए सड़ना, गलना या मरना जरूरी है, तभी वह बढ़ता और फलदायी होता है (यूह0 12:24)। इसी प्रकार, विश्वासियों की यह भौतिक देह मरती है, परन्तु एक दिन प्रभु परमेश्वर उन्हें पुनः जीवित और परिवर्तित कर देगा।

"और जो कुछ तू बोता है, तू वह देह नही बोता जो उत्पन्न होने वाली है, परन्तु निरा दाना, चाहे गेहूं का या किसी

और अनाज का" (प0कुरि0 15:37)। जब किसी बीज को बोया जाता है तो क्या उससे उगने वाला पौधा उस बोये गये बीज की ही तरह होता है? नहीं। उसका रूप परिवर्तित (भिन्न) होता है। *"परन्तु परमेश्वर अपनी इच्छानुसार उसे देह देता है, और हरेक बीज को उसकी विशेष देह"* (प0कुरि0 15:38)। प्रत्येक बीज से उसी प्रकार का पौधा उगता है जैसा कि प्रभु परमेश्वर ने निर्धारित किया है। प्रत्येक प्रकार के पौधे का अपना-अपना रूप, रंग एवं आकार होता है। प्रत्येक बीज द्वारा पुनरुत्पादित पौधे का आकार-प्रकार वही होता है जैसा कि सृष्टि-रचना के समय प्रभु परमेश्वर ने निर्धारित किया। *"सब शरीर एक समान नहीं, परन्तु मनुष्यों का शरीर एक प्रकार का है, पशुओं का दूसरे प्रकार का। पक्षियों का शरीर अन्य है तो मछलियों का भिन्न प्रकार का"* (प0कुरि0 15:39)। इस पृथ्वी पर परमेश्वर ने विभिन्न प्रकार के प्राणियों (जीवों) को विभिन्न प्रकार की देह प्रदान की है। मनुष्य के लिए एक खास प्रकार की देह, जानवरों के लिए भिन्न प्रकार की देह, मछलियों के लिए एक दूसरे प्रकार की देह तथा पक्षियों के लिए अन्य प्रकार की देह, (इत्यादि)। *"स्वर्गीय देह हैं पार्थिव देह भी हैं, परन्तु स्वर्गीय देह का तेज और है तो पार्थिव देह का और"* (प0कुरि0 15:40)।

जरा इस धरती के बारे में विचार करें! इस धरातल पर नदियां हैं, समुद्र हैं, वृक्ष हैं तथा अन्य अनेक खूबसूरत चीजें। लेकिन चन्द्रमा इस धरती से बहुत भिन्न है। वहां कोई फसल नहीं उगती और वहां नदी या समुद्र नहीं हैं। सूर्य तो चन्द्रमा व पृथ्वी

दोनों से बहुत भिन्न है – अर्थात् गैस का जलता हुआ एक गोला। सूर्य पर किसी भी प्रकार का जीवन सम्भव नहीं है। *"सूर्य का तेज और है, चांद का तेज और, फिर तारों का तेज भी और है, वरन् एक तारे का तेज दूसरे से भिन्न है"* (प0कुरि0 15:41)। सूर्य तो चन्द्रमा से बहुत अधिक तेज चमकता है, और चन्द्रमा का प्रकाश तारों के प्रकाश से भिन्न है। यहां तक कि विभिन्न तारों के प्रकाश में भी भिन्नता पायी जाती है। इन सब उदाहरणों से यह प्रमाणित होता है कि विश्वासियों के मृतकों में से पुनः जी उठने के समय की देह (अर्थात् पुनरुत्थान के समय की देह) एक परिवर्तित देह होगी जो कि उनके इस पार्थिव देह से भिन्न होगी। यह रूपान्तरण कुछ उसी प्रकार का होगा जैसे कि तितली का लार्वा एक तितली के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। *"मृतकों का जी उठना भी ऐसा ही है। नश्वर देह बोई जाती है और अविनाशी देह जिलाई जाती है, अनादर के साथ बोई जाती है और महिमा के साथ जिलाई जाती है, निर्बल दशा में बोई जाती है और सामर्थ्य में जिलाई जाती है"* (प0कुरि0 15:42-43)। पौलुस बिल्कुल स्पष्ट कर देता है कि हमारी पुनरुत्थान-देह एक परिवर्तित एवं बेहतर (महिमामय) देह होगी। हमारी पार्थिव देह पापी अवस्था (मानव जाति) में पैदा होने के कारण पाप से भ्रष्ट हो चुकी है। परन्तु हमारी पुनरुत्थान देह परमेश्वर प्रदत्त नई देह होगी और पाप की भ्रष्टता से अप्रभावित।

"स्वाभाविक दशा में बोई जाती है और आत्मिक दशा में जिलाई जाती है। जबकि स्वाभाविक देह है तो आत्मिक देह भी है" (प0कुरि0 15:44)। जल, वायु, धूप, भोजन इत्यादि पर आधारित

हमारी यह प्राकृतिक, पार्थिव देह मरेगी और सड़न-गलन का शिकार होगी। परन्तु जब यह पुनः जीवित की जाएगी तो एक आत्मिक देह के रूप में होगी, अर्थात् एक ऐसी देह जिसका जीवन-स्रोत परमेश्वर का आत्मा है। *"इसलिए यह भी लिखा है, 'पहला मनुष्य, आदम, जीवित प्राणी बना,' और अन्तिम जीवनदायक आत्मा। अतः पहले आत्मिक नहीं वरन् स्वाभाविक था, और तब आत्मिक आया। पहला मनुष्य पृथ्वी से है अर्थात् पार्थिव, दूसरा मनुष्य स्वर्ग से है। जैसे वह पार्थिव है, वैसे ही वे भी हैं जो पार्थिव हैं, और जैसा वह स्वर्गीय है, वैसे ही वे भी हैं, जो स्वर्गीय हैं। और जैसे हमने उस पार्थिव का रूप धारण किया है, वैसे ही उस स्वर्गीय का भी रूप धारण करेंगे"* (प0कुरि0 15:45-49)।

जब परमेश्वर ने आदम को सृजा, तो उसे जीवन प्रदान किया और संतान उत्पन्न करने की क्षमता। हमें यह प्राकृतिक एवं पाप से भ्रष्ट देह आदम से प्राप्त हुई, जो मानव जाति का आदि पिता है। परन्तु मृत्यु की अधिकार-सत्ता से हमें छुटकारा देने हेतु, प्रभु परमेश्वर ने एक दूसरे **मनुष्य** को नियुक्त किया – **यीशु मसीह** (द्वितीय आदम)। उसने एक नये प्रकार के लोगों की शुरुआत किया, अर्थात् नये जीवन में पुनरुत्थान। जैसे हमारी पार्थिव देह आदम की देह समान है और पाप की भ्रष्टता से कुप्रभावित है; उसी प्रकार हमारी पुनरुत्थान-देह मसीह की देह के समान होगी और पाप से अप्रभावित। हम आदम से पैदा हुए और उसके समान देह पाए। जब हमें रूपान्तरित पुनरुत्थान-देह मिलेगी तो हम मसीह के 'प्रतिरूप' (प्रतिबिम्ब) को धारण किए होंगे। *"हे भाइयो मैं यह*

कहता हूं कि मांस और लहू परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते, और न विनाश, अविनाशी का अधिकारी हो सकता है" (प0कुरि0 15:50)। पाप से भ्रष्ट हमारी पार्थिव देह स्वर्ग में अनन्त काल तक रहने योग्य नहीं है। इसीलिए हमारी देह को स्वर्गिक देह में रूपान्तरित होना जरूरी है जो पाप और मृत्यु के श्राप से अप्रभावित हो। ऐसी देह में ही स्वर्ग में सदाकाल तक निवास करना सम्भव है।

"देखो, मैं तुम्हें एक रहस्य की बात बताता हूं: हम सब सोएंगे नहीं परन्तु सब के सब बदल जाएंगे" (प0कुरि 15:51)। इस पुनरुत्थान से पहले सभी विश्वासियों का मरना जरूरी नहीं है, लेकिन सब विश्वासियों की देह उस समय पुनरुत्थान-देह में रूपान्तरित हो जाएगी। पौलुस इसे एक **रहस्य** की संज्ञा देता है। क्योंकि यह सत्य प्रभु यीशु के स्वर्गारोहण के पश्चात ही पवित्र आत्मा द्वारा प्रेरितों पर प्रकट किया गया। इससे पूर्व इसके बारे में लोगों को स्पष्ट ज्ञान नहीं था। *"यह एक क्षण में, पलक मारते ही, अन्तिम तुरही के बजाए जाने के समय होगा। क्योंकि तुरही बजेगी, मृतक अविनाशी दशा में जिलाए जाएंगे और हम बदल जाएंगे। क्योंकि इस नाशवान का अविनाशी को और मरणशील का अमरता को पहिनना अवश्य है"* (प0कुरि0 15:52-53) पौलुस के शब्दों पर ध्यान दें। वह बड़ी स्पष्टता से कहता है कि "अन्तिम तुरही के बजाए जाने के समय" प्रत्येक विश्वासी (चाहे जीवित दशा में हो या मृतक, और जहां कहीं भी हो) की देह एक नई पुनरुत्थान-देह में रूपान्तरित हो जाएगी। इस रूपान्तरण में लगने वाले समय पर ध्यान दें : "एक क्षण में पलक मारते ही"।

"परन्तु जब यह नाशवान्, अविनाशी को पहन लेगा और यह मरणशील अमरता को पहन लेगा तो यह लिखा हुआ वचन पूरा हो जाएगा : 'मृत्यु को विजय ने निगल लिया है। हे मृत्यु, तेरी विजय कहां है? हे मृत्यु, तेरा डंक कहां है'? मृत्यु का डंक तो पाप है, और पाप की शक्ति व्यवस्था है। परन्तु परमेश्वर का धन्यवाद हो जो हमें प्रभु यीशु मसीह के द्वारा विजयी करता है" (प0कुरि0 15:54-57)। जब हमारी देह का पुनरुत्थान-देह में रूपान्तरण हो जाएगा, तब मृत्यु पर पूर्ण विजय हो जाएगी। मृत्यु के अस्त्र-शस्त्र की भांति, पाप हमारे जीवन में दुख-दर्द एवं अलगाव पैदा करता है; और पाप को **व्यवस्था** से अधिकार मिलता है, क्योंकि व्यवस्था बगैर पाप का नाम नहीं। परन्तु नई पुनरुत्थान-देह पाने पर दो बातें बिल्कुल बदल जाएंगी – हमारी नई देह पाप से भ्रष्ट देह नहीं होगी, और हम पाप की उपस्थिति से सदाकाल तक के लिए अलग अर्थात् स्वर्ग में होंगे। पौलुस यह भी स्पष्ट करता है कि यह सब प्रभु मसीह के द्वारा ही सम्भव एवं सम्पन्न हुआ है। रोमियों की पत्री के छठवें अध्याय में यह बताया गया है कि परमेश्वर की दृष्टि में (सैद्धान्तिक तौर पर) मसीह के साथ हमारी पहचान एवं एकत्व के द्वारा यह आध्यात्मिक विजय हमारी हो चुकी है। परन्तु मसीह की मृत्यु द्वारा उपलब्ध समस्त आशिषों को हम अभी तक (व्यवहारिक तौर पर) प्राप्त नहीं किए हैं अर्थात् अपनी नई देह में हम अभी स्वर्ग में भी प्रवेश नहीं किए हैं।

"इसलिए हे मेरे प्रिय भाइयों, दृढ़ और अटल रहो तथा प्रभु के कार्य में सर्वदा बढ़ते जाओ, क्योंकि तुम जानते हो कि तुम्हारा

परिश्रम प्रभु में व्यर्थ नहीं है" (प0कुरि0 15:58)। जैसा कि पहले भी कहा गया, कुरिन्थुस की मंडली के लोग अपनी शारीरिकता-केन्द्रित जीवन-शैली के कारण संघर्षमय (आध्यात्मिक) जीवन जी रहे थे। यदि वे आत्मा के चलाए चलते तो न तो शारीरिकता की अभिलाषाओं को पूरा करते और न ही अविश्वास से संघर्ष। वे **मसीह में** प्राप्त आशिष एवं अधिकार में आध्यात्मिक स्थिरता के साथ फलदायी जीवन जी सकते थे।

तेरह

"पवित्र लोगों के लिए दान एकत्रित करने के सम्बन्ध में जो निर्देश मैंने गलातिया की कलीसियाओं को दिया है उसे तुम भी मानो। सप्ताह के पहले दिन तुम में से प्रत्येक अपनी आय के अनुसार अपने पास कुछ रख छोड़े कि मेरे आने पर दान एकत्रित न करना पड़े। और जब मैं आऊंगा तो जिन्हें तुम चाहोगे उन्हें पत्र देकर भेज दूंगा कि तुम्हारा दान यरूशलेम पहुंचा दें" (प0कुरि0 16:1-3)। कुरिन्थियों के नाम अपनी इस पत्री का अन्त करने से पूर्व पौलुस ने यरूशलेम की कलीसिया की आर्थिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में लिखा। सम्भवतः घोर यातना के कारण तत्कालीन यरूशलेम की मंडली के विश्वासियों में बहुत गरीबी थी। गलातिया क्षेत्र की मंडलियों में होते हुए, पौलुस इस पत्री को लिखते समय इफिसुस में था, और वहां से कुरिन्थुस जाने वाला था। इसीलिए कुरिन्थुस के विश्वासियों को यरूशलेम की कलीसिया हेतु दान एकत्र करने के लिए लिखा और दान सम्बन्धी कुछेक दिशा-निर्देश भी दिए। **संतों के लिए दान** (दान का उद्देश्य), **सप्ताह के पहले दिन** (नियत-कालिक), **तुम में से प्रत्येक** (वैयक्तिक), **अपनी आय के अनुसार** (समानुपातिक या यथासंभव), **अपने पास कुछ रख छोड़े** (निजी एवं गोपनीय), **मेरे आने पर दान एकत्रित न करना पड़े** (दबावरहित)। वर्तमान समय में इसका व्यवहारिक मायने क्या है? सभी विश्वासी 'मसीह में' भाई-बहन हैं। जैसे हम अपने इहलौकिक सगे-संबंधियों या परिवार वालों की भौतिक आवश्यकताओं की चिन्ता

करते हैं, उसी प्रकार 'मसीह में' अपने आत्मिक परिवार के भाई-बहनों की आवश्यकताओं की भी चिन्ता करनी है। **आत्मा** के चलाए चलने पर, जरूरतमंद विश्वासियों की आवश्यकताओं के प्रति, पवित्र आत्मा हमें संवेदनशील या जागरूक बनाएगा। जैसे पौलुस ने अन्य मंडलियों से यरूशलेम की कलीसिया को मदद देने के लिए कहा, उसी प्रकार हम भी अपने आवश्यकताग्रस्त विश्वासी भाई-बहनों की सहायता हेतु तत्पर रहेंगे।

"यदि तीमुथियुस आ जाए तो ध्यान रखना कि वह तुम्हारे साथ निर्भय होकर रहे, क्योंकि वह भी मेरे समान प्रभु का कार्य कर रहा है" (प0कुरि0 16:10)। उन दिनों विभिन्न स्थानों पर बहुत से विश्वासी मंडली के रूप में एकत्रित होते थे, परन्तु उन सब को प्रोत्साहन, खरी शिक्षा एवं अच्छे नेतृत्व की सख्त जरूरत थी। कलीसियाओं में शिक्षा की इतनी आवश्यकता थी कि सब जगह पौलुस का पहुंचना सम्भव नहीं था। इसलिए उसने अन्य विश्वासियों को शिक्षा देने एवं नेतृत्व-विकास में सहायता करने के लिए शिष्यता-प्रशिक्षण द्वारा तैयार किया। सेवा में सहायता के लिए तैयार किए गये ऐसे लोगों में एक तीमुथियुस नाम का विश्वासी भी था। *"तब वह दिरबे और लुस्त्रा को भी गया। और देखो, वहां तीमुथियुस नामक एक चेला था, जो किसी विश्वासी यहूदी महिला का पुत्र था, परन्तु उसका पिता यूनानी था। उसका लुस्त्रा तथा इकुनियम के भाइयों में अच्छा नाम था। पौलुस इस व्यक्ति को अपने साथ ले जाना चाहता था। अतः उसे लेकर उन स्थानों में रहने वाले यहूदियों के कारण उसका ख़तना किया, क्योंकि वे सब जानते थे कि उसका*

पिता यूनानी था" (प्रेरित0 16:1-3)। जब पौलुस किसी स्थान पर स्वयं जाने में असमर्थ होता था, तो ऐसे किसी जन को वहां भेजता था जो **आत्मा** की अधीनता में जीवन व्यतीत करता था। तीमुथियुस ऐसा ही व्यक्ति था। पौलुस उसकी आत्मिक अवस्था को जानता था और उस पर भरोसा कर सकता था। तीमुथियुस पौलुस की सेवा-संगति में शिष्यता-प्रशिक्षण पाया था। चूंकि तीमुथियुस **आत्मा** की अधीनता में जीवन जी रहा था, इसलिए पौलुस को यह भरोसा था कि उसे जिस किसी मंडली में सेवा के लिए भेजेगा, उस मंडली के लोगों को तीमुथियुस द्वारा समुचित आत्मिक सेवकाई प्राप्त होगी।

"यदि तीमुथियुस आ जाए तो ध्यान रखना कि वह तुम्हारे साथ निर्भय होकर रहे, क्योंकि वह भी मेरे समान प्रभु का कार्य कर रहा है। इसलिए कोई उसे तुच्छ न जाने, परन्तु उसे कुशल से विदा करना कि वो मेरे पास आ जाए, क्योंकि मैं भाइयों के साथ उसके आने की प्रतीक्षा कर रहा हूं" (प0कुरि0 16:10-11)। स्मरण रहे कि कुरिन्थुस की मंडली के लोग शारीरिकता का जीवन जी रहे थे। अतः पौलुस ने उन्हें आगाह किया कि यदि तीमुथियुस वहां जाए तो वे उसका ख्याल रखें। पौलुस की दृष्टि में तीमुथियुस महत्वपूर्ण था और वह चाहता था कि कुरिन्थुस के विश्वासी उसकी उपेक्षा न करें। अनेक बार आत्मिक लोग हमारी सेवा-सहायता करना चाहते हैं, किन्तु शारीरिक विचार-भावना में होने के कारण हम उनकी आत्मिक सेवा का तिरस्कार एवं नुक्ताचीनी करते हैं। अतः पौलुस कुरिन्थुस के लोगों से यह चाहता था कि वे तीमुथियुस की ईश्वरीय सेवा, संगति एवं उसके संदेश को सुनने के लिए खुले मन से तैयार रहें।

यहां पौलुस ने दो बिन्दुओं पर विचार व्यक्त किया : दूसरों की आवश्यकतापूर्ति में सहायता हेतु दान देना, और हमारे मध्य सेवा हेतु परमेश्वर द्वारा भेजे गए लोगों का स्वागत-सम्मान करना। क्या शारीरिक जीवन-शैली में यह सब समुचित ढंग से किया जा सकता है? नहीं। स्मरण करें! शारीरिकता की मानसिकता में हम सिर्फ स्वार्थ-सिद्धि एवं अहम्मान की चिन्ता करते हैं, दूसरों की आवश्यकताओं की नहीं। ऐसी अवस्था में हम स्वार्थपूर्ति के अभिलाषी होते हैं, और दूसरों के लिए देने के अनिच्छुक। इसी प्रकार शारीरिक भावना में हम उन आत्मिक लोगों के प्रति समुचित आदर-भाव नहीं रखते जिन्हें परमेश्वर हमारी सेवा-सहायता करने के लिए भेजता है। शारीरिक जन ऐसे आत्मिक सेवकों की आलोचना व उपेक्षा करने के प्रलोभन में होता है। हमारी शारीरिकता अपना आदर-मान एवं नाम-कमाई चाहती है, न कि दूसरे आत्मिक लोगों की सेवा-सहायता।

चौदह

"जागते रहो, विश्वास में स्थिर रहो, पुरुषार्थ करो और शक्तिशाली बनो" (प0कुरि0 16:13)। पहला कुरिन्थियों की पत्री में अब तक कही गई बातों के आधार पर पौलुस ने उस मंडली के विश्वासियों को जागरूक रहने के लिए प्रोत्साहित किया। इस पूरी पत्री में पौलुस ने उनकी शारीरिकतापूर्ण जीवन-शैली को उजागर किया। इसीलिए, अब इस तेरहवें पद में उन्हें पवित्र आत्मा प्रदत्त सत्य के "विश्वास में स्थिर" रहने के लिए प्रोत्साहित करता है। शारीरिकता के चलाए चलने पर वे 'विभिन्न प्रकार की शिक्षाओं व सिद्धान्तों के झोंके द्वारा इधर-उधर भरमाए जा रहे' थे। परन्तु पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने पर सत्य में लंगर डालकर स्थिर रहना संभव है। अतः पौलुस ने उन्हें "पुरुषार्थी" होने (अर्थात् पुरुषों की तरह साहसपूर्वक सक्रिय होने) तथा "शक्तिशाली" होने के लिए उत्साहित किया। पहला कुरिन्थयों के तीसरे अध्याय में उन्हें दूध पीने वाले "बालक" की तरह दर्शाया गया है, जो गरिष्ठ भोजन नहीं पचा सकते। अब वह उन्हीं को पुरुषार्थी एवं साहसी होने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है। यह बदलाव कैसे सम्भव? केवल मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के सह-क्रूसित होने की आत्मिक सच्चाई को मानने तथा पवित्र आत्मा द्वारा चलाए जाने के द्वारा। उन्हें शक्ति कहां (से) मिलती? *"अतः प्रभु और उसके सामर्थ्य की शक्ति में बलवान बनो"* (इफि0 6:10)। जब पवित्र आत्मा में होकर हम अपना जीवन व्यतीत करेंगे तो हमारे

जीवन में मसीह का जीवन पुनरुत्पादित (निर्मित) होगा और वही हमारा जीवन-स्रोत व जीवन आधार होगा। इस प्रकार हम **उसमें शक्तिशाली** होते जाएंगे, जो हमारा जीवन है। मगर शारीरिकता में हम सिर्फ अपनी ताकत व ज्ञान-बुद्धि के अहंकार के अनुसार जीवन-व्यवहार करेंगे। ऐसी अवस्था में हमारे जीवन का स्रोत मसीह नहीं होगा।

"जो कुछ करो, प्रेम से करो" (प0कुरि0 16:14)। थोड़ी देर के लिये पहला कुरिन्थियों के तेरहवें अध्याय के प्रारम्भिक पदों के संदेश पर पुनः विचार करें, जहां यह बताया गया है कि प्रेमविहीन तरीके से किया गया हमारा सारा धर्म-कर्म निरर्थक है और परमेश्वर को अस्वीकार्य। अतः यहां फिर लिखा है : "जो कुछ करो, **प्रेम** से करो"। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि सब कुछ **आत्मा** के अनुसार करो। सच्चे प्रेम में आचरण करने का सिर्फ यही एक तरीका है, क्योंकि सच्चा प्रेम पवित्र आत्मा का फल है (गला0 5:22)।

"भाइयो, तुम स्तिफनास के कुटुम्बियों को जानते हो कि वे अखाया के पहिले फल हैं और पवित्र लोगों की सेवा के लिए सदा तैयार रहते हैं। मेरा तुमसे आग्रह है कि तुम ऐसे लोगों के अधीन रहो, और ऐसे प्रत्येक के भी जो इस काम मे सहायक और परिश्रमी हैं" (प0कुरि 16:15-16)। उस समय के **अखाया** नामक प्रान्त का निवासी **स्तिफनास** तथा उसका परिवार पौलुस के सुसमाचार-प्रचार के द्वारा उस क्षेत्र में प्रभु यीशु के पहले मसीही विश्वासी थे। उनका उदाहरण देकर पौलुस कुरिन्थुस के विश्वासियों को यह दर्शा रहा था कि पवित्र आत्मा की अधीनता में चलने पर हमारा जीवन कैसा होना चाहिए। स्तिफनास दूसरों के सेवार्थ समर्पित व्यक्ति था। हमें ऐसे

लोगों के नेतृत्व की अधीनता ग्रहण करनी चाहिए जो अपने अहंकार को मृतक मानकर खीष्त-केन्द्रित जीवन बिताते हैं। *"मैं स्तिफनास और फूरतूनातुस और अखइकुस के आने से प्रसन्न हूं, क्योंकि जो तुम न कर सके उसे उन्होंने पूर्ण किया है। उन्होंने तुम्हारी तथा मेरी आत्मा को सुख दिया है। अतः ऐसे मनुष्यों का आदर करो"* (प0कुरि0 16:17-18)। ध्यान दें कि पौलुस इन व्यक्तियों का समर्थन क्यों कर रहा है। क्या इनकी शिक्षा-शैली अथवा अन्य किसी बड़े काम के कारण? नहीं। दूसरों की सेवा के लिए निरन्तर उनकी तत्परता के कारण। इसीलिए पौलुस कहता है कि *उन्होंने... मेरी आत्मा को सुख (ताजगी) दिया है*। अपने लोगों को प्रभु परमेश्वर ने विभिन्न वरदान एवं योग्यताएं दी हैं। हमें चाहे जो वरदान या योग्यता दी गई हो, यदि हम पवित्र आत्मा की अधीनता में चलेंगे तो वह अपनी इच्छानुसार इस वरदान का अपनी मंडली की भलाई हेतु समुचित उपयोग करेगा (प0कुरि0 12:12-27)।

"एशिया की कलीसियाओं की ओर से तुमको नमस्कार। अक्विला और प्रिसका तथा उसके घर की कलीसिया का तुमको प्रभु में हार्दिक नमस्कार। सब भाइयों का तुम्हें नमस्कार। पवित्र चुम्बन सहित एक दूसरे का अभिवादन करो" (प0कुरि0 16:19-20)। एशिया की तमाम कलीसियाओं की ओर से पौलुस ने कुरिन्थुस की कलीसिया के लोगों को अभिवादन भेजा। सम्भवतः उन तमाम कलीसियाओं के अधिकतर लोग कुरिन्थुस की मंडली के लोगों को नहीं जानते थे या उनसे कभी भेंट-मुलाकात नहीं किए थे, लेकिन मसीह में एक होने के कारण एक-दूसरे के प्रति प्रेम व चिन्ता रखते थे। हमारे बारे में भी ऐसा ही है। पवित्र आत्मा के चलाए चलने पर

हम समस्त विश्वासियों के प्रति प्रेम व चिन्ता रखते हैं, भले ही उनसे कभी भेंट नहीं हुई। पवित्र आत्मा हम सबको सच्ची एकता के सूत्र में बांधे है। पौलुस ने "पवित्र चुम्बन" सहित अभिवादन करने की भी बात लिखी। उन दिनों उस समाज के पुरुषों द्वारा पुरुषों का तथा महिलाओं द्वारा महिलाओं का गाल चूमकर एक-दूसरे का अभिवादन करने की प्रथा थी। यह उनकी संस्कृति (कल्चर) का एक अंग था।

"मुझ पौलुस का अपने हाथ से लिखा नमस्कार। यदि कोई प्रभु से प्रेम न रखे तो वह शापित हो। हे प्रभु आ! प्रभु यीशु का अनुग्रह तुम पर हो। मेरा प्रेम मसीह यीशु में तुम सबके साथ रहे। आमीन" (प0कुरि0 16:21-24)। यहां पौलुस बिल्कुल स्पष्ट कर देता है कि यह पत्री उसकी ओर से है। उसने कुरिन्थुस के विश्वासियों के प्रति अपने प्रेम को भी स्पष्ट शब्दों में बताया : "मेरा प्रेम मसीह यीशु में तुम सब के साथ रहे।" इतना ही नहीं, उसने उन्हें परमेश्वर के अद्‌भुत अनुग्रह का भी स्मरण कराया : "प्रभु यीशु का अनुग्रह तुम पर हो"। पौलुस ने इस पुस्तक में कई कठोर बातों के द्वारा कुरिन्थियों की मंडली को समझाया। कभी-कभी जब आत्मिक लोग हमें ऐसी बातें कठोर शब्दों में समझाते हैं तो यह सोचने का प्रलोभन होता है कि वे हमसे प्रेम नहीं रखते; किन्तु यह सच नहीं है। प्रायः प्रभु ऐसे आत्मिक लोगों के द्वारा हमारी शारीरिक जीवन-शैली का पर्दाफाश करता है, ताकि हम **आत्मा** के चलाए जीवन बिताएं। अतः पौलुस ने कुरिन्थुस की मंडली के प्रति अपने सच्चे आत्मिक प्रेम का इजहार भी किया।

हमारे अन्य प्रकाशन

1. उत्पत्ति और उद्धार की कहानी
2. सुदृढ़ आधार
3. परमेश्वर कृत उद्धार
4. प्रेरितों के काम
5. रोमियों
6. आत्मिक जन्म
7. वह मुझमें और मैं उसमें
8. आध्यात्मिक विकास के सिद्धान्त
9. प्रभु पर दृष्टि
10. उद्धार का अभिप्राय
11. पवित्र शास्त्र बाइबॅल की भविष्यवाणियाँ
12. इफिसियों